'स्टॉर पॉकेट सीरीज' के अन्तर्गत

दो रुपये में

स्टॉर पाकेट बुक्स का यह नया रूप है। इसमें हम प्रस्तुत करेंगे आपके प्रिय लेखकों के बड़े रोचक उपन्यास।

स्टॉर पाकेट बुक्स का यह नया रूप आपको कैसा लगा? आपके सुझाव हमारा पथ-प्रदर्शन करेंगे।

—प्रकाशक

एक

"बहू से न मिलियेगा ?" डाक्टर द्वारकाप्रसाद के कानों में यह स्वर पड़ा।

उन्होंने मुड़कर देखा। सामने उनकी पत्नी जानकी लाल जोड़ा पहने खड़ी उन्हें पुकार रही थी। इन वस्त्रों में वह स्वयं दुल्हिन-सी लग रही थी। कुछ क्षण तक वह चुपचाप अपनी पत्नी की ओर देखते रहे और फिर बोले—

"क्या कहा तुमने ?"

"तरुणा से न मिलियेगा ?"

"तुम मिल चुकीं क्या ?"

"मैं तो सुबह से उसके पास हूँ—आप भी तो चलिये।"

"तुमने देखा, मैंने देखा।"

"वाह ! जैसे आपकी कुछ है ही नहीं।"

"मेरा मतलब था, अच्छा नहीं लगता···क्या जाऊँ अब बेटी को देखने।"

"जैसे आप तो बूढ़े दादा बन गये···चलिये, उसे देखना ही होगा।"

"अच्छा।"

"हाँ। यह लीजिए जड़ाऊ सैट" जानकी ने गहनों का बक्स बढ़ाते हुए कहा।

"यह किस लिये ?"

"मुँह दिखलाई देना होगा।"

"किन्तु; यह तो तुम्हारा···"

"तो क्या हुआ निर्मल भी तो अपना है···याद है जब पहले-पहल मैं इस घर में आई थी तो यही सैट आपके बाबूजी ने मुझे मुँह दिखलाई में भेंट किया था।"

"और आज यह मुझे बहू को देना होगा···जानकी! सच पूछो यदि तुम मेरा साथ न देतीं तो आज मैं निर्मल को इस योग्य न बना सकता।"

"अच्छा, बनाइये नहीं···उठिये···उसे भी आराम करना है, बेचारी सुबह से जकड़ी बैठी है।"

डाक्टर द्वारकाप्रसाद उठे और सैट हाथों में थाम कर उस कमरे की ओर चले जहाँ तरुणा बैठी थी। दुल्हिन को देखने के लिए आने वाले सब परिचित व्यक्ति और दूसरे सम्बन्धी आराम के लिये जा चुके थे। वह अकेली बैठी जानकी की प्रतीक्षा कर रही थी। वह पिछली रात से निरन्तर जाग रही थी और थकावट से उसकी आँखें बार-बार बन्द हुई जा रही थीं।

द्वारकाप्रसाद ने ज्योंही पाँव भीतर रखा तरुणा सँभल कर बैठ गई। लाज से उसकी आँखें झुक गईं और वह कनखियों से उन पैरों को देखने लगी जो धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़े आ रहे थे।

उसका हृदय अनजाने ही धड़कने लगा मानो वह किसी उजाड़ में बैठी हो, सहमी-सहमी भयभीत-सी आने वाले तूफान की प्रतीक्षा में। जैसे ही डाक्टर के पाँव उसके पास आकर रुके वह अभिवादन के लिए उनके चरणों में झुक गई।

"रहने दो बेटी!" डाक्टर द्वारकाप्रसाद ने झट पाँव पीछे हटा लिए और उसके कंधों को थाम कर आशीर्वाद देने लगे। लाज से झुका चाँद सा मुखड़ा···मौन और उदास···बिछुड़े हुए मायके की याद में बहाये हुए आँसुओं के चिन्ह अभी तक उसके गालों पर

दिखाई दे रहे थे।

द्वारकाप्रसाद ने गहनों का डिब्बा खोलकर तरुणा के सामने किया और धीरे से बोले, 'यह लो !'

तरुणा ने हाथ नहीं बढ़ाया और संकोच से धरती की ओर देखती रही। जानकी ने डिब्बा पति के हाथ से ले लिया और बल-पूर्वक तरुणा के हाथों में थमाते बोली।

'यह लो···जेठ जी की भेंट···मूंह दिखलाई।'

तरुणा ने जानकी से डिब्बा ले लिया और दबे होंठों से उनका धन्यवाद किया।

'तरुणा !' द्वारकाप्रसाद ने झट कहा, 'यह भेंट नहीं है···मेरे घर की मान है, मर्यादा है जो मैं तुम्हारी झोली में डाल रहा हूँ··· अब इसकी रक्षा तुम्हारे हाथ में है। निर्मल मेरा भाई नहीं, बेटा है···यह न भूलना।'

तरुणा ने झुकी हुई आँखें ऊपर उठाईं और द्वारकाप्रसाद की ओर देखा। आँखों का मिलना था कि वह एकाएक जंगली बांस की भाँति काँप गई। उसके पाँव तले की धरती खिसक गई और उसे सहसा यूँ अनुभव हुआ उसे किसी ने जैसे आकाश से धरती पर पटक दिया हो। वह अवाक् उनके मुख की ओर देखती रह गई।

द्वारकाप्रसाद भी गुम-सुम उसे देख रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि तरुणा का आभामय मुख पीला पढ़ गया था, उसके होंठ कांप रहे थे और आँखों की पुतलियाँ पथरा गईं थीं। ऐस प्रतीत हो रहा था जैसे वह बेसुध होकर गिरने ही वाली है।

सहसा जानकी की उपस्थिति का भान कर वह बोले, जानकी। इसे सोने के कमरे में ले जाओ···बहुत थक गई है। यह कहकर वह शीघ्रता से बाहर निकल गये। तरुणा ने उन्हें जाते हुए देखा। वह अवश्य ही गिरकर बेसुध हो जाती यदि जानकी उसे बढ़कर सहारा न देती तो।

'क्या हुआ तरुणा ?"

'कुछ नहीं भाभी !' यूँही चक्कर सा आ गया था···वह भी क्या सोचते होंगे कि पहली बार मिलने को आये और···'

'उनकी चिन्ता न करो···वह डाक्टर हैं और दूसरों की पीड़ा को भली प्रकार समझते हैं···देखा नहीं, तुम्हें देखते ही जान गये कि तुम्हें आराम की आवश्यकता है।'

तरुणा चुप रही। अतीत का एक धुंधला सा चित्र उसके मस्तिष्क में उजागर हो रहा था। वह खोई-खोई शून्य में देख रही थी जानकी ने उसे सहारा दिया और दूसरे कमरे में ले गई।

द्वारकाप्रसाद अपने कमरे में लौट आए और विचारों में उलझ गए। वह एक विचित्र असमंजस में थे। उन्हें अभी तक विश्वास न आ रहा था कि तरुणा वह लड़की है···उसकी घबराहट से तो यही स्पष्ट था किन्तु, फिर भी सोचने लगे···कहीं यह उनका भ्रम तो नहीं···उस शक्ल सूरत की और भी लड़कियाँ हो सकती हैं।

रात बढ़ती जा रही थी। एक-एक करके घर के सब कमरों की बत्तियाँ बुझ गईं। उनके कानों में निरन्तर जानकी के पाँव की चाप सुनाई दे रही थी जो तेजी से एक कमरे से दूसरे कमरे में और दूसरे से तीसरे में आ जा रही थी। वह बिखरी हुई वस्तुओं को संभालने में व्यस्त थी। ब्याह शादी वाला घर भी अच्छा खासा कबाड़खाना सा बन जाता है। वह सामान को ठीक ढंग से टिका रही थी। दिन-भर काम में लगे रहने पर भी वह ऐसी फुर्ती से काम कर रही थी मानो वह कोई मशीन हो जिसे थकान का कोई भान तक नहीं होता।

द्वारकादास ने भी जानकी को काम से न रोका। वह स्वयं चिन्तित थे। नींद उनकी आँखों से उड़ चुकी थी और शरीर की थकान की हल्की-हल्की पीड़ा से अंग-अंग में जलन-सी जैसे किसी ने अंगारों पर लिटा दिया हो।

उनके चारों ओर अंधेरा था किन्तु एक धुंधला चेहरा बार-बार

उनके सम्मुख आता ···यह मुख था तरुणा का जो लजाई सी, घब-राई सी, आँखों में आँसू लिए उनके सामने खड़ी थी। वे तड़प उठे। उनकी आँखों के सामने वह दृश्य फिर गया जब उन्होंने पहले-पहल उसे देखा था। उस समय भी वह ऐसी ही घबराई हुई थी जैसे वह कोई अपराध करते हुए पकड़ी गई हो···अन्तर केवल इतना था कि अब वह दुल्हिन के वस्त्रों में थी, सजी-धजी।

वह रात भी ऐसी ही अँधेरी थी जब पहली बार उनकी उससे भेंट हुई। बाहर हल्की-हल्की बूँदा-बाँदी हो रही थी और उनकी डिस्पैंसरी की छत पर टिक-टिक टिक-टिक की ध्वनि उनके हृदय की धड़कन से ताल मिला रही थी। उस समय वह अकेले थे। नर्स और कम्पाउंडर अपने घर को जा चुके थे। वह स्वयं भी घर जाने के लिए व्याकुल थे किन्तु एक प्रिय मित्र के टेलीफोन ने उन्हें वहीं रुके रहने पर विवश कर दिया था।

वह उनके पास एक रोगी को भेज रहा था। उन्होंने पहले तो अधिक रात हो जाने के कारण उसे देखने से इन्कार कर दिया था किन्तु मित्र के अधिक आग्रह करने पर वह मान गये और अब उस रोगी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

प्रतीक्षा की घड़ियों को काटने के लिए उन्होंने मेज पर रखी 'लाईफ' पत्रिका उठा ली और उसके पन्ने पलटने लगे···'लाईफ'··· जीवन—वह जीवन से प्यार करते थे—वह एक सच्चे डाक्टर थे जिन्हें अपने कर्त्तव्य का पूर्ण भास था और रोगियों की मृत्यु के पंजे से रक्षा करने में उन्हें एक विशेष आनन्द प्राप्त होता था। वह पूरे मन से पीड़ा और रोग को सुख में परिवर्तित करने के लिए संलग्न रहते···इसी कारण शहर में जब भी कोई किसी डाक्टरी परामर्श की बात करता तो इनका नाम सबसे पहले लिया जाता। वह एक उच्च-कोटि के प्रवीण डाक्टर थे। एक डाक्टर का मूल कर्त्तव्य क्या होना चाहिए, इसका उन्हें पूरा ज्ञान था। इसीलिए अब तक उनका

क्लिनिक खुला था।

घरर्र···घरर्र···एक मोटर उनके क्लिनिक के पास आकर रुकी। वह चौंककर उठे और पत्रिका को मेज पर रखकर खिड़की के पास आ खड़े हुए।

टैक्सी का किराया चुकाकर आने वाला व्यक्ति उनके फ़ाटक के पास रुका और जेब से एक लिफाफा निकालकर डिस्पैंसरी से बाहर लगे हुए बोर्ड से पता मिलाने लगा। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा। आने वाला व्यक्ति एक लड़की थी जो काली साड़ी पहने फाटक खोलकर शीघ्र पाँव उठाती भीतर आ रही थी। उसकी चाल से प्रतीत होता था कि वह बहुत घबराई हुई है और उसे उनकी सहायता की तुरन्त आवश्यकता है।

डाक्टर द्वारकादास संभल गए और अपनी कुर्सी पर आ बैठे। लड़की कमरे के बाहर रुक गई। डाक्टर ने आँखें उठाईं और धीरे से कहा, "आ जाइये।"

वह उनके सामने आकर चुपचाप खड़ी हो गई। डाक्टर द्वारकादास ने सरसरी दृष्टि से सिर से पैर तक उसे देखा और बोले "बैठिए !"

उनका संकेत पाते ही वह सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई। उसके मुख से स्पष्ट था कि उसे कोई विशेष रोग है। इससे पूर्व कि वह उस पर कोई प्रश्न करते उसने लिफाफा उनकी ओर बढ़ा दिया।

द्वारकादास ने लिफाफा खोला और पढ़ना आरम्भ करने से पूर्व तीखी दृष्टि से फिर सामने बैठे रोगी को देखा। वह आँखें नीची किए उँगलियों से मेज को खरोंच रही थी मानो किसी बात से लज्जित हो।

पत्र उनके पुराने सहपाठी और मित्र मिस्टर खुराना का था। उनका संदेह ठीक ही था। लड़की माँ बनने वाली थी और डाक्टर द्वारकादास के पास निरीक्षण और आवश्यक सहायता के लिए भेजी

गई थी । इस समय उसका आना कुछ विचित्र-सा था ।

उन्होंने पत्र पढ़कर एक बार फिर उसकी ओर देखा । उसकी दृष्टि अभी तक मेज पर जमी हुई थी और उसके माथे पर पसीने की बूंदें झलक रही थीं । उसकी काली साड़ी पर वर्षा के छींटे काले धब्बों के समान लग रहे थे । वह कुछ देर उसकी ओर बिना बात किए देखते रहे और फिर उसे Inspection Room में आने का संकेत किया ।

वह उठी और सहमी हुई सी उनके पीछे-पीछे साथ वाले छोटे कमरे में आ गई । अपनी घबराहट को छिपाने पर भी चलते हुए उसके पाँव काँप रहे थे । उन्होंने उसे लोहे के पलंग पर बिछे बिस्तर पर बैठ जाने को कहा और निरीक्षण के लिए स्टेथस्कोप निकालकर अपने कानों से लगा लिया । वह बैठ गई । उसकी दृष्टि अब तक धरती में गढ़ी हुई थी ।

"क्या नाम है ?" डाक्टर द्वारकादास ने धीरे से कहा । वह चुप रही, जैसे नाम बताने से डर रही हो । डाक्टर ने होंठों पर हल्की सी मुस्कान उत्पन्न करते हुए कहा—"घबराओ नहीं—डाक्टर से कुछ छिपाया नहीं जाता ।"

"रोजी ।" उसने कम्पित होठों से उत्तर दिया ।

"ईसाई हैं ? कहाँ रहती हैं ?"

"अच्छा ही रहेगा यदि आप अधिक पूछताछ न करें ।"

"ओह ! अच्छा लेट जाइए ।"

रोजी पहले तो हिचकिचाई और फिर डाक्टर की तीखी दृष्टि से बचने के लिए लेट गई । उसने अपना मुँह आँचल से ढक लिया । डाक्टर ने पहले तो उसकी नाड़ी देखी और फिर स्टेथस्कोप द्वारा उसके शरीर का निरीक्षण करने लगा । जैसे ही उन्होंने स्टेथस्कोप उसके पेट पर लगाया, वह काँप उठी ।

निरीक्षण के पश्चात् उन्होंने स्टेथस्कोप को कानों से उतार

दिया। वह अभी तक मुख ढाँपे चुपचाप लेटी हुई थी। कुछ समय उसकी ओर देखते रहने के पश्चात् वह धीरे से बोले—

"रोजी ! तुम्हारा सन्देह ठीक ही है।"

वह चौंक उठी और झट सम्भल कर बैठ गई। वास्तविकता को जानते हुए भी डाक्टर के मुँह से यह शब्द सुनकर उसे आश्चर्य हो रहा था। उसने साड़ी के पल्लू से अपने पूरे शरीर को लपेट लिया और प्रश्नसूचक दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। गम्भीर मुख पर फीकी मुस्कान लाते हुए वह बोले :—

"रोजी ! तुम माँ बनने वाली हो।"

"डाक्टर !" वह कुछ कहते-कहते रुक गई और आँखें नीची करके कुछ सोचने लगी। उसका मुख एकाएक मुर्झा गया।

"वह कौन है जो तुम्हारे जीवन से खेल गया ?"

रोजी ने कोई उत्तर न दिया।

"तुमको किसी ने धोखा दिया है क्या ?"

वह फिर भी चुप रही।

"कहो तो मैं उसे समझाने बुझाने का प्रयत्न करूँ...तुम दोनों की शादी हो जाए।"

उसकी आँखें फिर भी झुकी ही रहीं।

द्वारकादास को आश्चर्य हो रहा था कि वह क्यों उसकी किसी बात का उत्तर नहीं दे रही। उनके यहाँ आने वाले रोगी तो उनसे कुछ नहीं छिपाते...डाक्टर का व्यवसाय ही ऐसा होता है...उसके पास सहानुभूति होती है, करुणा होती है, उसका कार्य तो पीड़ा को दूर करना है। थोड़े समय बाद वह फिर बोले—

"न जाने तुम पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इतनी सरलता से किसी के जाल में क्यों फंस जाती हो...आग में कूदने से और क्या परिणाम निकल सकता है ?"

रोजी फिर भी चुप रही। उसके होंठ थर्रा रहे थे जैसे वह कुछ

कहना चाहती हो, किन्तु कह न पा रही हो। डाक्टर द्वारकादास बोले—

"उसका पता दे दो···पुलिस की सहायता भी ली जा सकती है।"

यह बात सुनकर रोजी के शरीर में कंपकपी सी दौड़ गई। उसने दृष्टि ऊपर उठाई और डबडबाई आंखों से उनकी ओर देखा। दो मोटे आंसू पलकों से ढलके और उसके गालों पर क्षण भर रुक कर बह गए। इन आंसुओं में उसकी पीड़ा की झलक थी, उसकी विवशता थी। पथराई दृष्टि से वह एकटक डाक्टर को देखती रही और फिर अचानक कुछ विचार आने पर पर्स खोलकर उसमें से दस-दस रुपए के कुछ नोट और सोने का एक हार निकाल कर उनकी ओर बढ़ाया।

"यह क्या ?" डाक्टर द्वारकादास ने आश्चर्य से पूछा।

"मेरी पूंजी—मेरी इज्जत का मूल्य···" करुणा भरे स्वर में वह बुड़बुड़ाई और फिर रुक-रुक कर कहने लगी, "डाक्टर इस आपत्ति से मुझे मुक्ति दिला दीजिए···मैं जीवन भर यह उपकार न भूलूंगी—मेरे लिए यह जीवन मृत्यु का प्रश्न है।"

डाक्टर द्वारकादास ने कड़ी दृष्टि उस पर डाली और आगे बढ़ कर वह नोट तथा हार उसके हाथ से लेकर दोबारा उसी पर्स में डाल दिये। कुछ क्षण पर्स हाथ में लेकर उसी कठोर दृष्टि से वह उसे देखते रहे और फिर पर्स की जंजीर बन्द करके उसकी गोद में फेंक दिया। इसके पश्चात् उन्होंने बाहर का द्वार खोला। वर्षा जोरों से हो रही थी और द्वार खुलते ही उसके छींटे भीतर आ गये। रोजी घबराकर अपने स्थान पर उठकर खड़ी हो गई।

"अब तुम जा सकती हो।" डाक्टर के स्वर में कठोरता थी।

"डाक्टर साहब···" उसने कांपते होठों से कुछ कहना चाहा।

"मिस रोजी ! मैं विवश हूँ—मेरे मित्र ने मुझे समझने में भूल की है जो तुम्हें मेरे पास भेजा है।"

"किन्तु, आप मेरी स्थिति को भी तो देखें—मैं कहीं की भी न रहूँगी—"

"रोजी ! मैं एक डाक्टर हूँ और जीवन से प्यार करता हूँ— मैं किसी निर्दोष की हत्या का भार अपने सिर नहीं लेना चाहता।"

"डाक्टर ! मुझे यूँ निराश न कीजिए—मैं बड़ी आस लेकर आई हूँ।"

"ठीक है मिस रोजी ! किन्तु मैं अपने नियम नहीं तोड़ सकता।"

रोजी चुप हो गई। उसकी आँखों में आये हुए आँसू स्वयं ही रुक गए, उसने पर्स उठाया और साड़ी के आँचल को लपेटती हुई बाहर जाने को बढ़ी। जाते हुए एक बार उसने फिर मुड़कर डाक्टर की ओर देखा उन आँखों में उसके लिए दया का कोई स्थान न था। वह मुड़ी और द्वार के पास पहुँच गई।

"मिस रोजी !" सहसा डाक्टर द्वारकादास ने उसे पुकारा और वह बिना उसकी ओर मुड़कर देखे रुक गई और सुनने लगी।

"मैं अब भी यही कहूँगा कि जैसे भी हो उस व्यक्ति को अपना लो और इस निर्दोष आत्मा के प्राणों से मत खेलो—तुम एक लड़की नहीं बल्कि एक स्त्री हो—माँ हो—उस जीवन की रक्षा करना ही तुम्हारे वास्तविक जीवन का आरम्भ है..."

"आरम्भ या अन्त ?" उसने गर्दन को मोड़कर उखड़ी हुई दृष्टि से डाक्टर की ओर देखा। वह अभी कोई उत्तर न दे पाये थे कि रोजी ने कुछ सोचकर पूछा—

"डाक्टर ! आपकी कोई सन्तान है ?"

"नहीं तो—।"

"यदि मैं इस आत्मा को दुनिया का प्रकाश दिखलाऊँ तो क्या आप अपना समझकर इसके पालन-पोषण का भार उठा सकेंगे ?"

"रोजी !" ऐसी खुली बात अब तक डाक्टर द्वारकादास से किसी ने न की थी।

"आप घबड़ा गये ? मैं जानती हूँ आपसे यह न हो सकेगा, क्योंकि आप जीवन से प्यार करते हैं—केवल अपने जीवन से—किसी दूसरे के जीवन से नहीं—और आपका नहीं यह तो दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति का नियम है—दूसरों को मार्ग दिखाने और स्वयं उसी मार्ग पर चलने में बड़ा अन्तर है डाक्टर साहब ! समाज के हित की ओट लेकर सब व्यक्ति कुछ रटे-रटाये नियमों का जाप कर सकते हैं—केवल जाप ।"

यह कहकर रोजी गर्दन झटकाती बाहर चली गई। डाक्टर द्वारकादास आश्चर्यचकित उसे देखते रहे। वह उसे रोक न सके।

बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी, हवा भी तेज थी जिसके कारण पानी की बौछार भयानक ध्वनि उत्पन्न कर रही थी। डाक्टर ने देखा रोजी इस तूफान में तेजी से सड़क पार कर रही थी। उनके तीक्ष्ण शब्दों ने उसमें दृढ़ता भर दी थी। उसने अकेले ही इस बाढ़ को थामने का निश्चय कर लिया था। वह कितनी देर गुमसुम खड़े उसकी ओर देखते और उसके जीवन के सम्बन्ध में विचारते रहे।

लगभग बारह बजे वह घर पहुँचे होंगे। उस दिन रात भर उन्हें नींद न आई। काली साड़ी में रोजी की सूरत बार-बार उनकी आँखों के सामने आती और उन्हें चिन्तित करती।

सवेरे नाश्ता किये बिना ही घर से निकल पड़े और खुराना के यहाँ पहुँच गये। इससे पूर्व कि वह रात वाली लड़की के विषय में अपने मित्र से कुछ कहते खुराना ने एक पत्र उनके सामने रख दिया। पत्र किसी लड़की का था जो अपनी आत्महत्या की सूचना अपने सम्बन्धियों को दे रही थी। डाक्टर द्वारकादास ने पत्र के नीचे लिखा नाम पढ़ा और पूछा :—

"तरुणा—यह तरुणा कौन है ?"

"वह लड़की जो रात मैंने भेजी थी।"

"वह तो रोजी"

"रोजी नहीं, उसका वास्तविक नाम तरुणा है—लज्जा से अपना दूसरा नाम बताया होगा।"

"किन्तु तुम उसे क्योंकर जानते हो ?"

"किसी बोर्डिंग हाऊस में रहती है। आत्म-हत्या कर रही थी कि मैंने बचा लिया। वह जान-बूझकर मेरी गाड़ी के आगे आ गई थी।"

"कब की बात है ?"

"दो दिन की।"

"कहाँ की रहने वाली है ?"

"उसने कुछ नहीं बताया—उसकी दशा देखते हुए मैंने उसे अधिक कुरेदना उचित नहीं समझा आपके पास भिजवा दिया।"

द्वारकादास ने अधिक बातचीत न की और चुपचाप अपनी डिस्पैंसरी में चले आये। बार-बार उनके कानों में एक ही शब्द आकर टकराता—रोजी···नहीं तरुणा।

और आज लगभग दो वर्ष पश्चात् वही तरुणा उनके घर वहू बन कर आई थी···निर्मल की जीवन साथी—वही सूरत, वही नयन-नक्श, हाँ अब मुख पर दुःख के चिन्ह इतने स्पष्ट न थे उनमें तनिक रंगीली आ गई थी—वह भी उन्हें पहचान कर झेंप गई थी। उन्होंने अनुभव किया कि उनका साँस घुटा जा रहा है। उनका पूरा शरीर पसीने से भीग रहा था। घर में निर्मल के कमरे को छोड़कर सब बत्तियाँ बुझ चुकी थीं—वह दोनों अभी तक जाग रहे थे।

द्वारकादास अपनी चारपाई छोड़कर धीरे-धीरे डगमगाते हुये बाहर आँगन में आये। निर्मल के कमरे में धीरे-धीरे बातें करने की आवाज आ रही थी। द्वारकादास ने अपनी घबराहट पर अधिकार पाने के लिए रसोई घर के बाहर चबूतरे पर रखी सुराही से पानी का एक गिलास पिया। उन्हें अभी तक अपने देखे पर विश्वास न

आ रहा था।

एकाएक वह दबे पाँव बरामदा पार कर निर्मल के कमरे के पास पहुँच गये। उन्होंने एक बार चारों ओर देखा और फिर चोर की भाँति भीतर झांका। निर्मल अभी-अभी बाहर से लौटा था और पर्दे के पीछे कपड़े बदल रहा था। तरुणा पलंग पर बैठी कुछ सोच रही थी—उसमें व रोजी में कोई अन्तर न था। कहीं उनसे बदला लेने के लिए वह जानबूझकर तो दुल्हिन बनकर उनके घर नहीं आ गई···उनकी भावनाओं और इज्जत से खेलने के लिये···? यह सोचकर वह हृदय मसोसकर रह गये।

कमरे को जानकी ने बड़े सुन्दर ढंग से सजा रखा था। मसहरी सुगंधित फूलों से सजी हुई थी और उसकी भीनी-भीनी सगन्ध बाहर तक आ रही थी।

निर्मल मुस्कराता हुआ पर्दे के पीछे से निकला और तरुणा के समीप आ गया। नई दुल्हिन से वह हँस-हँस कर यूँ बातें कर रहा था जैसे बहुत पहले से वह एक-दूसरे को जानते हों। निर्मल ने उस की ठोढ़ी उठाकर उससे दृष्टि मिलाई और उसने मुस्कराकर फिर आँखें नीची करलीं। द्वारकादास के अन्तर ने उन्हें कोसा और वह झट से हट कर अँधेरे में हो गये—निर्मल की बहू को यूँ देखना और वह भी उनके मिलन की प्रथम-रात में···यह तो पाप था··· स्वयं ही लज्जित होकर वह अपने कमरे में लौट आये और बिस्तर पर गिर कर करवटें बदलने लगे।

कहीं वह तरुणा का रहस्य निर्मल या जानकी को बता दें तो उन्हें बड़ा भारी आघात पहुँचेगा और घर में एक कलह उत्पन्न हो जायेगी—हो सकता है तरुणा लज्जा से कोई ऐसा पग उठा ले जो उनके परिवार की मर्यादा को मिट्टी में मिला दे। अब यह रहस्य उनके मन में ही रहना चाहिये। किन्तु क्या वह इसे जीवन भर एक धधकते अंगारे की भाँति हृदय में छिपा रख सकेंगे—

इसे दबाये रखने में उनकी अपनी क्या दशा होगी'''यह सोच कर वह बेचैन हो गये और सोने का प्रयत्न करने लगे।

सवेरे जब घर के सब व्यक्ति नाश्ते की मेज पर बैठे तो डाक्टर द्वारकादास उनमें न थे। निर्मल और तरुणा भी दूसरे आये हुए सम्बन्धियोंमें वहाँ घिरे बैठे थे। जब प्रतीक्षा करने पर भी वह न आये तो नगीना को उन्हें लिवा लाने के लिए भेजा गया। सबके आग्रह पर अनजाने मन से उन्हें आना ही पड़ा। उन्हें अपनी इस मानसिक दशा पर हँसी भी आई—वह तो ऐसा व्यवहार कर रहे हैं मानों तरुणा ने नहीं उन्होंने ही कोई अपराध किया हो।

तरुणा की कुर्सी उनकी कुर्सी के बिल्कुल सामने थी। उसकी आँखें लज्जा से झुकी हुई थीं। उसके एक ओर जानकी और दूसरी ओर निर्मल की कुर्सी थी। द्वारकादास बड़े हँसमुख व्यक्ति थे। सदा कोई ऐसी बात करते ताकि हँसी के फव्वारे छूट जाते किन्तु आज वह असाधारण रूप से गम्भीर थे। उनका यूँ चुप रहना सबको अखर रहा था।

साथ वाली कुर्सी पर बैठी उनकी बहन तारो से न रहा गया बोली—"क्या बात है भैया इतना सोच में हो? आज क्या कोई बात न सुनाओगे?"

"क्या बात सुनाऊँ" बलपूर्वक होंठों पर मुस्कराहट लाते हुए वह बोले, "आज सबसे बड़ी बात यह है कि तुम्हारी नई भाभी आ गई है।"

यह कहकर द्वारकादास ने तरुणा की ओर देखा जो नई भाभी के शब्द पर काँप-सी गई। घबराहट से उसके माथे पर पसीने की बूँदें इकट्ठी हो गई थीं। सुहाग की चमकती हुई बिंदिया को मोतियों ने घेर लिया था। कुछ क्षण बाद जानकी बोली—

"अब यह क्या सुनायेंगे—बड़ों में पाँव रखा है—बहू के सामने

बातें करते जँचते नहीं।"

"वाह भाभी ! हमारे भैया को अभी से बूढ़ा बता दिया।"

"अब बहस ही होती रहेगी या कोई चाय भी बनायेगा।" निर्मल ने बात का विषय बदलते हुए कहा। जानकी झट मेज पर झुकी और प्याले सीधे करने लगी। तारो ने लपक कर उसकी बाँह पकड़ ली और बोली, "भाभी ! तुम्हारे हाथ की चाय तो हर दिन पीते हैं। आज तो हम नई भाभी के हाथों से चाय पीयेंगे।"

तरुणा तारो की यह बात सुनकर घबरा गई। जब सबने इसी इच्छा का अनुमोदन किया तो वह कुर्सी छोड़कर चाय बनाने लगी।

द्वारकादास के प्याले में चीनी डालते हुए उसने थरथराते होंठों से धीरे-से पूछा, "एक दो या तीन चम्मच ?"

"केवल एक।" द्वारकादास ने उत्तर दिया और उसके हाथों को निहारने लगे जो काँप रहे थे। जब चायदानी उठाकर उसने द्वारकादास के प्याले में चाय उंडेलनी आरम्भ की तो उसकी उँगलियाँ जल रही थीं और उसके हाथ काँप रहे थे। चायदानी संभल न सकी और हाथ से छूट गई। गर्म पानी मेज पर बह गया और द्वारकादास के कपड़ों पर जा गिरा। वह झट से संभले। तरुणा लज्जा से पानी-पानी हो गई। उसके काँपते हुए होठों से निकला :—
"क्षमा कीजिये—"

द्वारकादास उठकर कपड़े बदलने दूसरे कमरे में चले गये। जानकी चाय बनाने लगी। तरुणा लज्जित हुई बैठी उन्हें देख रही थी। तारो ने उससे चुटकी ली और बोली—

"यह गुमसुम क्यों बैठी हो ? चाय ही गिरी है तेजाब नहीं। भैया भी क्या याद रखेंगे···पहले ही दिन उनके कपड़े रंगे गये।"

तरुणा चुपचाप बैठी चाय पीती रही। वह सोचने लगी कि इस वातावरण में जीवन क्योंकर कटेगा ?

दो

हवा के झोंके तरुणा के बालों और उसके आँचल से अठखेलियाँ कर रहे थे। वह नाव में लेटी थी और नाव नैनी झील के तल पर बहे जा रही थी। सामने दोनों हाथों में चप्पू लिये निर्मल बैठा हवा से उसके माथे पर लहराती हुई लटों को देख रहा था। उसके केशों से एक भीनी सुगन्ध वातावरण में फैल गई थी मानो किसी युवती के हाथों से इत्र की शीशी गिरकर टूट गई हो।

नैनी झील में एक अलौकिक-सा मौन था। चारों ओर पर्वतीय-शैल-मालाओं से घिरी यह झील प्राकृतिक सौन्दर्य का एक अनुपम दृश्य उपस्थित करती थी। ब्याह के दो दिन बाद ही वह शहर के कोलाहल से दूर कुछ दिन यहाँ व्यतीत करने आ गये थे। यह उन के नवजीवन का आरम्भ था। युवा आकांक्षाओं के पूर्ण होने का प्रथम अवसर था, एक-दूसरे को भली प्रकार समझने का अवकाश था···किन्तु; उनकी यह यात्रा कुछ विचित्र गम्भीर-सी यात्रा थी। निर्मल आश्चर्य में था कि 'तरुणा को एकाएक ब्याह के पश्चात् यह क्या हो गया है···' वह क्यों मौन, उदास और गम्भीर रहने लगी है···वह कौन-सी पीड़ा है जिसने उसे सहसा व्याकुल कर दिया है···जो मन-ही-मन उसे जला रही है और वह जुबान तक नहीं ला पाती ? तरुणा अब भी खोई-खोई आकाश की गहराइयों को नाप रही थी। झील के किनारे ऊँचे-ऊँचे पेड़ों में से कभी-कभी पक्षी के चहचहाने की ध्वनि आ जाती और वह उधर देखने लगती और कुछ क्षण बाद दृष्टि घुमाकर गगन-मंडल में खो जाती।

निर्मल बड़ी देर से उसे चुपचाप लेटे देख रहा था। वह इस

उलझन में था कि यह क्या परिस्थिति है। इतना सुन्दर दृश्य, यह एकान्त और प्रकृति की गोद और जिससे बातें करने, हँसने-खेलने के लिए बैठा हुआ था उसे इस बात का शायद भान भी नहीं कि कोई दूसरा व्यक्ति भी उसके साथ नाव में बैठा हुआ है और उससे कुछ कहने-सुनने को व्याकुल हो रहा है।

निर्मल ने नाव से बाहर झील के निखरे हुए पानी को देखा जो उसकी तरुणा के समान ही मौन और गहरा था और फिर नाव में लेटी तरुणा को देखा जो नये रेशमी वस्त्रों में बड़ी भली लग रही थी। उसने सिर से पाँव तक उसे निहारा। उसके गोरे-गोरे मेंहदी रचे पाँव बड़े सुन्दर लग रहे थे। कुछ देर वह उसे यूँ ही देखता रहा, फिर उसने धीरे-से चुल्लू भर पानी लेकर एक छींटा तरुणा के मुँह पर दे मारा। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। घबराहट से आँचल उसके वक्ष से ढलककर नीचे जा गिरा और वह आश्चर्य से निर्मल को देखने लगी जो उसके मुख पर पानी की बूँदें देखकर मुस्करा रहा था।

"यह क्या ?" वह अनायास पूछ बैठी।

"सोचा तुम्हें जगा दूँ।"

"मैं तो जाग रही थी।"

"हाँ आँखें तो खुली थीं तुम्हारी, किन्तु आस-पास की कुछ सुध न थी।"

"ओह।"

"तरुण।"

'जी !"

"यह तुम्हें कभी-कभी क्या हो जाता है—यदि तुम्हें मूर्ति बन बैठना ही था तो कानपुर क्या बुरा था ?...इन घाटियों और पर्वतों में आकर क्या लेना था ?"

"जानते हो, हम यहाँ क्यों आये हैं ?"

"क्यों ?"

"वहाँ के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में सोने के लिए।"

"तो तुम सोओ—मैं चला।" निर्मल ने मुँह बनाते तेज-तेज चप्पू चलाते हुए कहा। उसके मुख पर क्रोध की झलक देखकर तरुणा मुस्करा पड़ी और उठकर उसके पास आ बैठी। फिर उसका चप्पू चलाता हुआ हाथ थाम कर उसके वक्ष पर सिर टिका धीरे-से बोली "क्रोध आ गया मेरे राजा को!"

'बात जो तुमने ऐसी कर दी।"

"अभी बात ही की थी कि तिलमिला उठे···कहीं नयनों के बान चला देती तो···?"

"फिर लगीं बनाने।"

"मैं क्या बनाऊँगी—हाँ कभी-कभी आपको क्रोध में देखने को मन चाहता है।"

"क्यों?"

'उस समय आप और भी सुन्दर दिखाई देते हैं।"

तरुणा की बात सुनकर निर्मल की हँसी छूट गई जो मौन वातावरण को चीरती हुई झील के विशाल क्षेत्र में फैल गई। तरुणा की यही छोटी-छोटी मीठी बातें ही तो थीं जो निर्मल को उस पर मोहित किये हुए थीं। उसके बिना उसका जीवन सूना और नीरस था। ब्याह के बन्धन ने उनके अधूरे जीवन को पूर्ण कर दिया था। नाव झील में स्वयं ही हल्की-हल्की तरंगों के बहाव पर बहे जा रही थी और वह एक-दूसरे के साथ लगे साँसों की भाषा में कुछ कह-सुन रहे थे। कभी-कभी किसी पक्षी की चहचहाहट सुनाई दे जाती और उनकी दृष्टि का तार टूट जाता।

तरुणा ने धीरे-से कहा, "भैया आपको बहुत अच्छे लगते हैं ना!"

"हाँ, तरुण!···सच पूछो, आज जो कुछ मैं हूँ उन्हीं के कारण हूँ।" निर्मल ने मुस्कराकर उसकी ओर देखते उत्तर दिया।

"बड़े उपकार हैं उनके आप पर शायद।"

"हैं तो उपकार ही किन्तु; वह कर्त्तव्य समझ कर करते रहे हैं, मैं तो उनका आजीवन आभारी रहूँगा।"

'तो वह आपको दुनिया में सबसे अच्छे लगते हैं ?' तरुणा ने 'सबसे' पर बल देते हुए कहा।

"हाँ तरुणा ! किन्तु; यह क्या बात आरम्भ कर बैठीं—तुम भी तो मुझे प्राणों से प्रिय हो।'

"आप चौंक क्यों पड़े ? मैं कोई ईर्ष्या से तो नहीं कह रही।" तरुणा ने मुस्कराते हुए बात बदल दी।

"भैया मेरा कर्त्तव्य हैं और तुम मेरी प्राण—सो दोनों ही एक से प्रिय हो।"

"और कभी कर्त्तव्य पर प्राण न्यौछावर भी करने पड़ते हैं।"

"किन्तु तुम्हें तो किसी मूल्य पर भी न्यौछावर न कर सकूँगा।" निर्मल ने तरुणा की आँखों में झाँकते हुए कहा। दोनों मुस्करा दिये और तरुणा ने अपना मुँह फिर उसके वक्ष में छिपा लिया।

आकाश पर बिखरी हुई बदलियाँ धीरे-धीरे सिमट कर घटा में परिवर्तित हो रही थीं। यह सोचकर कि वर्षा होने वाली है वह शीघ्र किनारे पर आ गये और होटल की ओर बढ़े। अभी होटल के बाहर ही पहुँचे थे कि बौछार ने आन घेरा और जब वह भागते हुए बरामदे में पहुँचे तो उनके वस्त्र पूरे भीग चुके थे। वर्षा और तेज हो गई थी और थोड़े ही समय में सर्वत्र जल-थल हो गया।

उन्होंने भीगे हुए कपड़े बदले और अपने कमरे की खिड़की खोल कर बाहर का दृश्य देखने लगे। घनघोर घटा छाने से तनिक अंधेरा-सा हो गया था। पानी का तार टूटता ही न था। होटल का नौकर उनके लिये कॉफी ले आया। तरुणा ने ट्रे अपने सामने रख ली और कॉफी बनाने लगी। निर्मल उसकी गोरी और कोमल उँगलियों को निहारने लगा। उसे यूँ अनुभव हो रहा था मानो उसकी तरुणा उसके हृदय को स्पर्श कर रही हो और वह मचल उठा हो।

वर्षा होने के कारण वातावरण में एक हल्की-सी मीठी ठंडक उत्पन्न हो गई थी। जब वह प्याली में कॉफी उँडेल चुकी तो निर्मल ने उसका हाथ पकड़कर उसे सोफे पर अपने निकट खींच लिया और उसके गले में बाँहें डालकर अपना कॉफी का प्याला उसके होठों से लगा दिया। तरुणा ने झुकी दृष्टि से उसे देखा और दो घूँट कॉफी के पी लिये फिर झट उसने मेज पर से अपना प्याला उठा लिया। निर्मल ने अपना प्याला उसके प्याले से छुआया और दोनों एक साथ मुस्करा पड़े। वह आनन्द से विभोर हो रहे थे।

"एक बात पूछूँ ?" तरुणा ने सहसा भावनाओं को वश में करते हुए पूछा।

"एक क्यों—सब बातें पूछ डालो।"

"क्या आपको कभी उसका ध्यान भी आया है ?"

"किसका ?" निर्मल इस प्रश्न पर एकाएक चौंक-सा गया। क्षण-भर के लिए कॉफी का प्याला उसके हाथ में काँपा और वह प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

'उस नन्हीं आत्मा का जिसमें हम दोनों का रक्त था।"

"ओह—मैं समझा न जाने किसका ?"

उसका मुख गम्भीर पड़ गया और वह चुपचाप कॉफी पीने लगा।

'आपने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया।" तरुणा ने अपना प्रश्न फिरदो हराया।

निर्मल ने एक ही घूँट में पूरी कॉफी गले में उतार ली और प्याला मेज पर रखते हुए बोला, "यह आज दबी हुई बातों को कुरेद क्यों रही हो तुम ?"

"यूँ ही याद आ गई—आप बुरा मान गये क्या ?"

"इसमें बुरा मानने की क्या बात ? हाँ ऐसी बातों को भुला देना ही उचित है जिनकी याद व्यर्थ की चिन्ता का कारण बने।"

'आप जानते हैं कि यदि आप मुझे अपना जीवन साथी न बनाते

तो मैंने क्या सोच रखा था ?"

"क्या ?"

"कहीं डूबकर प्राण दे देती।"

"पगली ! ऐसा करने पर भगवान् तुम्हें कभी क्षमा न करते।"

"तो अब क्या क्षमा कर देंगे ?"

"क्यों ?"

"उसकी देन को—अपने प्यार की देन को…"

निर्मल ने उसके मुँह के आगे हथेली रख दी और उसे कुछ और कहने से रोक दिया। तरुणा की आँखों में आँसू उमड़ आये थे और वह उन्हें पी जाने का प्रयत्न कर रही थी। निर्मल कुछ क्षण उसे चुपचाप देखता रहा और फिर बोला :—

"मिलकर पाप किया है—मिलकर प्रायश्चित कर लेंगे।"

"एक बात और पूछूँ ?"

"क्या ?"

"आपके भैया जानते हैं क्या ?"

"पगली हो क्या—ऐसी बातें भी कही जाती हैं ?—यदि वह जान जाते तो मैं जीवन भर उन्हें मुँह न दिखा सकता था।"

तरुणा ने देखा कि यह बातें करते हुए निर्मल का मुख पीला पड़ता जाता था। वह जानती थी कि उसके विचार वास्तविकता से कितने परे थे। उसके भैया वह जानते थे जिसकी वह कल्पना भी न कर सकता था। उसके माथे पर चिन्ता के बल देख कर वह अपने होठों पर बलपूर्वक मुस्कान लाते हुए बोली—

"थोड़े दिनों में जब आपकी छुट्टी समाप्त हो जाएगी तो मैं क्या करूँगी ?"

"तुम भैया और भाभी के पास रहना।"

"आपके बिना कुछ अच्छा न लगेगा।"

"थोड़े दिनों की बात है…कोई मकान मिलते ही तुरन्त तुम्हें

अपने पास बुला लूँगा।"

"यदि मकान न मिला तो···?"

"यह कैसे हो सकता है—मेजर बख्शी ने वचन दिया है।"

"मिलिट्री की नौकरी तो अच्छी है किन्तु; यह बार-बार की बदली ठीक नहीं।"

"क्यों ?"

"न टिककर आराम से रह सकें, न कोई घर का सामान बना सकें—बस बदली के चक्कर में पड़े रहें—आज यहाँ कल वहाँ।"

"इसी में तो जीवन का आनन्द है—वह जीवन भी क्या जो स्थिर रह जाये।"

बात का विषय बदलते ही निर्मल के मस्तिष्क पर छाये हुए चिन्ता के बादल टूट गये, अतीत फिर ओझल हो गया और वह खुली खिड़की से बाहर का दृश्य देखने लगा। अभी तक वर्षा का तांता न टूटा था।

रात भर जोरों की वर्षा होती रही। आकाश ने अपने जल के सब स्रोत खोल दिये और नैनीताल की पहाड़ियों से रेंगता हुआ जल नैनी झील को भरता रहा। इस अथाह झील में न जाने कितना जल समा जाता था—तरुणा सोचने लगी मानव हृदय भी ऐसा ही गहरा है—इसी झील के समान जिसकी थाह को पाना सहज नहीं।

निर्मल सो गया, किन्तु; तरुणा को नींद न आई। उसके मस्तिष्क में बार-बार यह विचार उठकर उसे चोट लगाता कि वह भैया के पास नहीं रह सकेगी। उसके मन में उसके लिये घृणा उत्पन्न हो चुकी थी। वह उसे कभी आदर की दृष्टि से न देख सकेंगे। उनके निकट वह पापिन है—दुष्ट है—वह तो उनसे यह भी नहीं कह सकती थी कि इस पाप का भार उन्हीं के भाई के सिर पर है।

यदि उन्होंने यह बात जानकी से कह दी तो वह कहीं की न रहेगी। स्त्रियों की जबान लम्बी होती है···वह दो चार से कहेगी और ऐसे ही यह बात उसके जीवन पर मृत्यु के पंख फैला देगी···

उसके लिये नर्क के द्वार खोल देगी। यह बात सोचकर उसका सिर चकराने लगा, मन काँपने लगा और वह अन्धेरे में अपना सिर तकिये में छिपाकर रोने लगी।

वह सोचने लगी...."क्या उसे अपने मन की बात निर्मल से कह देनी चाहिए...कदाचित् इससे उसके मन का बोझ हल्का हो जाये...किन्तु, वह भी अपने भैया से उखड़ा-सा रहने लगेगा...सम्भव है दोनों के मध्य कोई ऐसा अन्तर उत्पन्न हो जाये कि वह एक-दूसरे से सदा के लिए दूर हो जाएँ...." यह सोचकर उसने रहस्य को अपने मन में रखने का निश्चय कर लिया।

इस रहस्य को अपने तक सीमित रखने का एक और कारण भी था। उसने अपने पाप को न केवल समाज से बल्कि निर्मल से भी छिपाया था। वह उसे कह चुकी थी कि वह बच्चा गिरा दिया गया था और वह सदा के लिए अँधेरे से बाहर आ चुकी थी।

किन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। उसने उस नवजीवन को समाप्त न किया था किन्तु; संसार में लाकर सुरक्षित हाथों में सौंप रखा था। उसने एक लड़के को जन्म दिया था जो एक आश्रम में पल रहा था। इस आपत्ति में उसकी सहायता उसके होस्टल की वार्डन ने की थी। उसने तरुणा के जीवन पर धब्बा न लगने दिया था और उसे गाँव में अपने नाते की बहन के यहाँ रखा था।

निर्मल के लिए अपना पाप, अति चिन्ता का कारण था और वह बड़े असमंजस में था कि इस कलंक को किस प्रकार दूर करे। जब तरुणा ने उसे बताया कि वह पाप से छुटकारा पा चुकी है और अब भय का कोई कारण न था तो उसके प्राण लौट आए और वह उससे ब्याह करने पर सहमत हो गया।

ब्याह से पूर्व तरुणा ने भली-भाँति हर बात पर विचार करके अपनी स्थिति को परख लिया था...शायद वह निर्मल को अपना जीवन संगी न बनाती क्योंकि उसने उसके साथ अपने पाप का

उत्तरदायित्व न उठाया था···फिर भी जब उसने अपने चारों ओर दृष्टि डाली और अपने जीवन को देखा तो निर्मल के अतिरिक्त कोई और व्यक्ति ऐसा न जान पड़ा जो उससे सहानुभूति रखते हुए उसका हाथ पकड़ सकता···और फिर एक न एक दिन यह रहस्य प्रगट होना ही था और उस समय केवल निर्मल ही उस बच्चे को अपना सकता था और कोई नहीं।

इसीलिए आज उसका ममत्व उभर आया था और उसने संकेत में निर्मल के विचार ज्ञात करने का प्रयत्न किया था। उससे और न रहा गया और वह निर्मल के वक्ष पर सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगी। उसे अभी तक निर्मल के वह शब्द याद थे जो उसने उसके सुकुमार शरीर को अपनी बाँहों में लेकर उसे ढाढस बंधाते हुए कहे थे,

"तरुण! अपनी पलकों से आँसू पूंछ डालो···अतीत को भूल जाओ···मैं तुम्हारे लिए नवजीवन का सन्देश लाया हूँ···"

"क्या?" उसने पूछा था।

"मैं तुमसे ब्याह करने को तैयार हूँ।"

"फिर सोच लीजिए···कहीं मँझधार में छोड़कर···" उसने फिर पूछा।

"नहीं···ऐसा मत सोचो तरुण! मेरे डगमगाते हुए पाँव को तुम्हारे सहारे की आवश्यकता है···मेरा साथ दो और सदा के लिए मेरी हो जाओ।"

तरुणा ने उस पर कोई प्रश्न न किया। उसकी नाव को किनारा मिल गया और वह उससे लिपट गई। अतीत को पीछे छोड़ कर वह कल्पना द्वारा भविष्य का निर्माण करने लगी···एक उज्ज्वल भविष्य जिसमें उसकी सब पीड़ा, सब निराशा धुल जाएगी।

उसने पहले तो सोचा कि वह निर्मल पर अपने बच्चे का रहस्य प्रगट कर दे और उसे बता दे कि उन दोनों का बच्चा जीवित है और एक आश्रम में पल रहा है। ब्याह के पश्चात् वह उसे घर ले

आयेंगे; किन्तु फिर न जाने क्यों उसने इसे उचित न समझा, किसी भय से वह कांप गई और चुप हो रही···उसने सोचा, हो सकता है यह ज्ञात होने पर वह उसे बिल्कुल ही खो बैठे और लोक लाज के डर से उसे सदा के लिए छोड़कर चला जाये।

ब्याह के पश्चात् जब वह उसके घर आई तो सपने में भी उसने यह न सोचा था कि उसका सम्बन्ध उन्हीं द्वारकादास से होगा जिनके पास वह अपने पाप का प्रमाण लेकर गई थी कि उनकी सहायता से छुटकारा पा सके और अपमानित होकर वहाँ से निकाली गई। द्वारका दास ही उसके पति के भाई थे और सच्ची बात तो यह है कि उन्हीं के कठोर व्यवहार ने उसे नवजीवन का सन्देश दिया था और वह अपने बालक के लिए बड़ी-से-बड़ी आपत्ति झेलने के लिए तत्पर हो गई थी और वह उसे दुनिया के प्रकाश में ले आई थी।

अब उसका क्या होगा, वह उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे ? उसे चरित्रहीन समझकर मुंह न लगायेंगे, और यदि निर्मल ने भी उसका साथ न दिया तो उसका कहीं ठौर न रहेगा, यह विचार आते ही उसका मन जो से धड़कने लगा और उसने अपना मुंह तकिये में छिपा लिया।

न जाने कब वर्षा बन्द हो गई और उसे नींद ने आ घेरा। जब उसकी आंख खुलीं तो कमरे की दीवारों पर सूर्य की किरणें खेल रही थीं और निर्मल दर्पण के सामने बैठा दाढ़ी बना रहा था। तरुणा ने लेटे-लेटे ही दृष्टि घुमा कर उसे देखा। उसका अंग-अंग थकान से दुख रहा था, आँखें रोती रहने से खिची हुई थीं। उसने निर्मल से कोई बात न की और फिर आँखें बंद करके लेटी रही। रात की वर्षा वातावरण में एक गीलापन छोड़ गई थी। उठते ही कमरे में उसे धूप अच्छी न लग रही थी।

एकाएक वह चौंककर उठ खड़ी हुई। घबराहट से उसका कलेजा धड़कने लगा और वह निर्मल को देखने लगी जो उसके शरीर पर

झुका आँचल के छोर से उसकी नाक को छू रहा था। उसके होठों पर खिली हुई मुस्कान को देखकर उसकी गम्भीरता जाती रही और वह संभलने का प्रयत्न करने लगी।

"भोर भई अब जागो···प्रियसी !" निर्मल ने गुनगुनाते हुए कहा।

'आँख देर से लगी।"

'सपनों की रंगशाला में डूबी रहीं ?"

"आपके विषय में सोचती रही···आँख न लगी।"

"क्या सोचती रहीं ?"

"आप मुझे अकेले छोड़कर चले जायेंगे तो मैं क्या करूँगी ?"

"तुम भी अनोखी हो—'कल क्या होगा' यदि यही सोचती रहोगी तो आज भी हाथ से निकल जायेगा।"

"आज ?"

"हाँ···यह सुहावने दिन···उठो ! चाय कब की ठंडी हो रही है।"

"आप पीजिए, मैं नहा कर···"

"ब्राह्मण कब से बनी हो ? ऐसा न चलेगा···तुम्हें चाय तो पीनी ही पड़ेगी।"

"किन्तु···"

"ऊँ हूँ—अब किन्तु-विन्तु कुछ नहीं···जो मैं कहूँ वही चलेगा अब तो।" निर्मल मुस्कराते हुए उसकी चारपाई पर बैठ गया और उसे गुदगुदाने लगा।

"अच्छा, अच्छा वही होगा। कपड़े तो ठीक कर लूँ।" तरुणा ने उठते हुए कहा। निर्मल के गुदगुदाने से उसकी हँसी छूट गई। हँसते-हँसते उसकी आँखों में पानी आ गया और वह सुन्दर लगने लगी, निर्मल टकटकी लगाये उसे देखे जा रहा था। तरुणा ने संकोच से आँखें झुका लीं और उठने लगी। निर्मल ने उठने में उसे सहारा

दिया और वह उठकर खड़ी हो गई।

हवा के शीतल झोंके अठखेलियाँ करते हुए भीतर आ रहे थे दोनों आराम कुर्सियों पर बैठे एक अलौकिक आनन्द का अनुभव क रहे थे, एक अनोखे परिवर्तन का भान।

बाहर बरामदे में खुलने वाला द्वार खुला और आस-पास ठह व्यक्तियों के बच्चे खेल-कूद में व्यस्त थे। उनका हू-हल्ला उनके एकान् को भंग कर रहा था। निर्मल को उनका शोर अच्छा न लग रह था, वह उठकर द्वार की ओर जाने लगा। तरुणा ने उसे रोकते हु कहा, "कहाँ चले?"

"जरा किवाड़ बन्द कर दूँ।"

"खुला रहने दीजिए—यह ठंडी-ठंडी मधुर हवा मन को अच्छ लगती है।"

"किन्तु; यह बच्चों का हू-हल्ला अच्छा नहीं लगता।"

"क्यों ? मुझे तो यह आवाजें बड़ी भली लगती हैं।"

"यह बात है…कहो तो दो-चार को बुला दूँ।"

अभी बात निर्मल के मुँह से निकली ही थी कि एक धमाक हुआ। दोनों ने एक साथ सामने देखा। खिड़की का एक शीशा तो एक गेंद उनके पाँवों में आ गिरी। शीशे का फूटना था कि बाह बच्चों का शोर बन्द हो गया।

निर्मल ने गेंद हाथ से उठाई और क्रोध में भरा बाहर की ओ जाने लगा। तरुणा ने उसे रोकते हुए द्वार की ओर संकेत किया किवाड़ से लगा एक नन्हा-सा बच्चा घबड़ाया खड़ा था। वह अपन गेंद लेने आया था किन्तु भीतर आने से डर रहा था। तरुणा सस्नेह उसकी ओर देखते हुए अपनी बाँहें फैलाईं और प्यार से बो

"आओ…डरो नहीं…भीतर आ जाओ…तुम्हें गेंद चाहि ना…!"

बच्चा झिझकता हुआ आगे बढ़ा। तरुणा ने गेंद निर्मल के ह

से ले ली और उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली—"तुम्हारी है ?"

बच्चे ने सिर हिलाते हुए 'हाँ' कही और तरुणा ने गेंद देते हुए उसे अपनी बाँहों में लेने के लिये हाथ बढ़ाये किन्तु; वह गेंद लेते ही मुड़कर तेजी से बाहर आ गया। उसके बाहर जाते ही फिर एक बार वातावरण में बच्चों का शोर उठा और वही उछल-कूद आरम्भ हो गई। निर्मल अभी तक मुँह बनाये क्रोध में भरा बैठा था। तरुणा उसके लिए चाय का प्याला बनाते बोली—

"कितना प्यारा बच्चा है।"

"कितना असभ्य है...शीशा तोड़ दिया है।"

"इसमें असभ्यता क्या ? बच्चा ही तो है...शीशा तोड़ा है मन तो नहीं तोड़ा।" तरुणा ने मुस्कराकर पति की ओर देखते हुए कहा।

निर्मल के होठों पर भी हल्की-सी मुस्कान आ गई। बरामदे में बच्चों का शोर बन्द हो चुका था। वह खेलते हुए बाग में चले गये। कुछ देर मौन रहने के बाद तरुणा ने पूछा—

"क्या आपको बच्चे अच्छे नहीं लगते ?"

"नहीं...और फिर ऐसे शीशे तोड़ने वाले बच्चे तो बिल्कुल अच्छे नहीं लगते।"

"कहीं आपके बच्चे भी ऐसे ही नटखट हुए तो—"यह बात कहते हुए तरुणा के मुख पर ममत्व झलक आया और वह शून्य में झांकने लगी। एकाएक किसी स्मृति ने उसे व्याकुल कर दिया।

"क्या सोच रही हो ?" जेब में से लाईटर निकालकर सिग्रेट सुलगाते हुए निर्मल ने पूछा।

"एक सपना देख रही थी किन्तु; वह अधूरा ही रह गया।" यह कहकर तरुणा झुक कर शीशे के टूटे हुए टुकड़े चुनने लगी।

"कौन-सा सपना ?" निर्मल ने लम्बा धुएँ का कश छोड़ा।

"सुनियेगा ?"

"सुनने के लिए ही तो कह रहा हूँ।"

"मैं सोच रही थी···वह भी आज कितना बड़ा होता···।"

"वह कौन ?"

"हमारा मुन्ना।"

"तरुण !" निर्मल कठोर स्वर में चिल्लाया और मुँह फेरकर खड़ा हो गया। उसने सिगरेट मुँह से निकालकर फेंक दिया और उसे पाँव से मसलने लगा। वह तरुणा के साथ अपने ब्याह से पूर्व के अनुचित सम्बन्ध को बिल्कुल भुला देना चाहता था और तरुणा निरन्तर उसे इसकी याद दिलाये जा रही थी, दूसरी ओर मुँह किये वह चुपचाप खड़ा सोचता रहा।

जब बड़ी देर तक तरुणा ने कोई उत्तर न दिया तो उसने गर्दन मोड़कर पीछे देखा। टूटे हुए शीश के टुकड़े सिमटे हुए वहीं पड़े थे किन्तु वह वहाँ न थी। निर्मल ने चारों ओर कमरे में दृष्टि दौड़ाई परन्तु वह दिखाई न दी।

स्नान-गृह का खुला हुआ किवाड़ देखकर वह उसे देखने के लिए उधर आया और झाँककर भीतर देखने लगा। तरुणा खुले नल के नीचे उँगली रखे खड़ी थी और उसकी उँगली से लहू बहकर पानी में मिल रहा था। निर्मल को आते देखकर वह मुड़ी।

"काँच लग गया ना ? सपने देखती रहोगी तो यूँही होगा।" यह कहते हुए निर्मल ने उसकी उँगली को थामा और हथेली दबाकर लहू को बन्द करने का प्रयत्न करने लगा। उसकी चोट को देखकर निर्मल को दुख हुआ था। तरुणा यह सोच रही थी कि इसने व्यर्थ उसे रुष्ट कर दिया। निर्मल का क्रोध दूर हो चुका था। उसकी कोमल हथेली को अगूँठे से दबाते हुए उसने उसे होठों से लगा लिया और तरुणा को अपने निकट खींच लिया। तरुणा की आँखों में अनायास आँसू भर आये। उसने अपना सिर पति के वक्ष में लगा दिया और आँखें नीची किये हुए धीरे से बोली—

"आप मुझसे रुष्ट हैं क्या ?"

"हूँ तो नहीं···हो जाऊँगा।" उसकी ठोड़ी को उठाकर··· उसकी आँखों में झाँकते हुए बोला, "तुम व्यर्थ बीती हुई बातों को कुरेद कर चिंतित करती हो।"

"अब क्षमा कर दो···फिर ऐसी भूल न होगी।" यह कहते हुए पलकों से रुके हुए आँसू उसके गालों पर ढुलक आये।

निर्मल का मन भी भर आया और उसने उसे आलिंगन में भींच लिया। अचानक छत पर लगे फव्वारे में पानी आ गया और दोनों फुहारे में भीग गए। शायद निर्मल का हाथ लग जाने से फव्वारे की टूँटी खुल गई थी। तरुणा ने भीगी हुई साड़ी को समेटते हुए भागना चाहा किन्तु निर्मल ने उसे रोक लिया और झट से फव्वारे की टूँटी को और खोल दिया। पानी की तेज फुहार में उसके कपड़े शरीर से चिपक गये। तरुणा ने फिर भागने की चेष्टा की किन्तु निर्मल की बाँहों से निकल भागना सहज न देखकर उसने हँसते हुए अपने आपको उसकी बाँहों में छोड़ दिया। बड़ी देर तक छत से पानी की फुहार और स्नान-गृह से हँसी के फव्वारे छूटते रहे।

तीन

"तरुण !"

"धोबी से जो कपड़े आये थे कहाँ रखे हैं ?"

"बड़े ट्रंक में···और हाँ अभी सूटकेस में भी जगह है।"

"अच्छा छोड़ो चलते-चलते न जाने क्या कुछ याद आने लगा।"

"इतना याद आने पर भी कुछ भूल जाइयेगा—"

"यह तो होता ही है···किन्तु, अबके कुछ भूल गया तो उसका भार तुम पर होगा।"

"और यदि आप जान-बूझकर अपना कुछ छोड़ जायें तो—"

"क्या ?"

"मुझे···"

"ओह···वचन देता हूँ जाते ही मंगवा लूँगा।"

"और यदि घर का प्रबन्ध न हो सका तो···"

"तो फिर बेबस हूँ—।"

"फिर मैं स्वयं ही चली आऊँगी।"

"इतनी अधीरता भी क्या···कहा ना पूरा प्रयत्न करूँगा।"

तरुणा चुप हो गई और सूटकेस को जमाने लगी। निर्मल ने उसके उदासीन मुख को देखा और कुछ देर खड़ा सोचता रहा। वह जानता था कि हर्ष की शेष कुछ इनी-गिनी घड़ियाँ बीत जाने के बाद उसकी क्या दशा होगी। वह सवेरे ही नौकरी पर लौट रहा था और उसके जाने के बाद तरुणा अकेली रह जायेगी। नव-वधु को थोड़े ही दिनों बाद छोड़कर चले जाना भी तो एक कठोरता है। वह स्वयं भी उदास था किन्तु, उसका मन रखने के लिए उसने अपनी

उदासीनता प्रगट न की और मुस्कराहट में टालता रहा।

तरुणा सवेरे से ही उसका सामान ठीक करने में लगी हुई थी। निर्मल उसके उदास मुख को अधिक न देख सका और उसके समीप आकर हथेली से उसके मुख को ऊपर उठाकर प्यार से उसके सिर में उँगलियाँ फेरने लगा। तरुणा की आंखों से टप-टप आंसू उसकी हथेली पर गिरने लगे।

"पगली"'इसमें रोने की क्या बात है।"

"कौन रो रहा है?" उसने आंचल से आंसू पोंछते हुए उत्तर दिया।

"तुम्हारी आंखें।"

"इनका क्या'''वह तो बरसती रहती हैं।"

"मेरे पीछे भी क्या ऐसा ही करोगी?"

"कल की क्या कहूँ?"

"तो एक बात सुन लो।"

"क्या।"

"मेरे जाने के बाद यदि तुम्हारी आँखें यूँ ही व्यर्थ बरसीं तो मुझे अच्छा न लगेगा।"

"यह भी कोई अपने बस की बात है।"

"क्यों नहीं'''जब मन उदास हो एक पत्र लिख देना।"

"तो आप भी एक वचन दीजिए—"

"क्या?"

"मुझे शीघ्र मँगवा लीजिए'''मैं यहाँ अधिक न रह सकूँगी।"

"क्यों? भैया हैं; भाभी हैं देखना तुम्हारा कितना सत्कार होगा।"

"किन्तु आपके बिना कुछ अच्छा न लगेगा।"

निर्मल ने तरुणा को पास खींच लिया। उसी समय बाहर बरामदे में आहट हुई और तरुणा झट अलग होकर अपने काम में

लग गई।

जानकी मुस्कराती हुई भीतर आई और उन्हें देखकर बोली, "यह सवेरे से ही तैयारी में क्या लगे हो खाने की भी सुध नहीं।"

"इतनी जल्दी क्या है···भैया की प्रतीक्षा तो कर लें।"

"वह तो कब के आ गये।"

यह सुनते ही तरुणा का कलेजा धड़क कर रह गया। न जाने भैया की उपस्थिति को सुनकर वह क्यों गुम-सुम सी हो जाती। जब वह घर में न होते तो वह स्वतन्त्रता-सी अनुभव करती और जब वह आ जाते तो उसकी आँख क्षण-भर के लिए भी ऊपर न उठती···यूँ लगता मानो उसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ गई हों, होंठ सी दिये गये हों।

भैया के आने की सुनकर वह सन्न-सी हो गई और चोर दृष्टि से जानकी को देखने लगी जो निर्मल से कह रही थी कि भैया उसे बुला रहे हैं। निर्मल जानकी को उसके पास छोड़कर भैया की बात सुनने चला गया और तरुणा टकटकी लगाये उसे बाहर जाते देखने लगी। जब कभी भी भैया निर्मल को अकेले में बुलाते तरुणा का कलेजा धड़कने लगता···कहीं वह उसके विषय में उससे कुछ न कह दें। अब भी वह यही सोच रही थी कि जानकी की आवाज ने उसे चौंका दिया। वह उससे कह रही थी···

"निर्मल से कहना जाते समय अपनी एक तस्वीर दे जाये।"

"जी! ओह! क्यों?"

"अकेले में मन लगाने के लिए।"

तरुणा ने संकोच से आँखें झुका लीं और धीरे-से बोली, "भाभी! क्या तुम उदास नहीं होतीं?"

"चल हट···" भाभी ने हँसते हुए कहा और क्षण भर रुककर फिर बोली, "अब तैयार हो जाओ खाना लगने ही वाला है।"

यह कहकर जानकी बाहर चली गई और तरुणा फिर उन्हीं विचारों में खो गई।

निर्मल ने भैया के कमरे में प्रवेश किया तो वह कपड़े बदल कर आराम करने को पलंग पर लेट चुके थे। निर्मल ने उनके पाँव छुए और कुर्सी सरका कर पास बैठते हुए बोला :—

"कब आये आप ?"

"थोड़ी ही देर हुई, तुम क्या कर रहे थे ?"

"जाने की तैयारी।"

"तो कल जा रहे हो ?"

"हाँ भैया। छुट्टी कटते तो पता न चला···यूँ लगता है जैसे कल ही आया था।"

"खुशी में ऐसा ही होता है;" उन्होंने मुस्करा कर छोटे भाई की ओर देखते हुए कहा।

इतने में नगीना ने पानी का गिलास लाकर द्वारकादास को दिया। वह कुछ थके हुए से लगते थे। जब नगीना पानी देकर चली गई तो निर्मल ने कहा।

"बड़ी देर हो जाती है डिस्पैंसरी में, थोड़ा शीघ्र बन्द कर दिया करें ना !"

"निर्मल ! यह अपने बस की बात नहीं···रोगी के आने का कोई समय तो निश्चित नहीं। काम में सदा व्यस्त रहना ही तो डाक्टर का जीवन है।"

"फिर भी अपने स्वास्थ्य का ध्यान तो आपको रखना ही चाहिये।"

"यूँ ही थोड़ी-सी थकान है अभी उतर जायेगी।"

निर्मल चुप हो गया। द्वारकादास ने क्षण भर रुककर प्रश्न किया।

"गाड़ी सवेरे कितने बजे जाती है ?"

"सात बजे।"

"तरुणा का क्या सोचा है ? क्या वह अकेली यहाँ रह

लेगी ?"

"अकेली कैसे ? आप सब लोग जो हैं···और फिर जब तक मैं घर का प्रबन्ध न कर लूं उसे यहाँ रहना ही होगा।"

"मेरा अभिप्राय था लड़कियाँ ब्याह के तुरन्त पश्चात् बिना पति के उदास हो जाती हैं···मैंने सोचा शायद मायके जाने का विचार हो।"

"नहीं भैया ! वहाँ जाकर क्या करेगी···माता-पिता तो हैं नहीं, रहे चाचा-चाची, उन्होंने ब्याह कर दिया। अब उन पर बोझ डालना कुछ उचित नहीं लगता।"

"ओह ! यह बाके इसके सगे चाचा हैं ?"

"हाँ भैया ! और पिता भी इन्हें ही समझिये···उन्होंने ही पाला-पोसा है।"

"तुम तो उनके सम्बन्ध में सब-कुछ जानते हो ?"

"जी···ओह···कुछ तो—"

"समझा···तरुणा ने बताया ही होगा ?"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। फिर द्वारकादास ने पूछा :—

"तरुण ने बी० ए० तो पास कर लिया न !"

"नहीं फ़ाइनल में रह गई।"

"कहाँ पढ़ती थी ?"

"लखनऊ···"

"तुम्हारी जान-पहचान भी शायद वहीं हुई ?"

"जी !" निर्मल कुछ घबरा गया और भैया की ओर देखने लगा जो होठों में फीकी मुस्कान दबाये बैठे थे।

"संजोग भी विचित्र होता है···तुम्हारे लिए कितनी ही लड़कियाँ देखीं, कइयों से बात बनते-बनते रह गई और···ब्याह वहीं हुआ जहाँ संजोग था···जिसकी कभी कल्पना भी न की थी।"

"हाँ भैया···और फिर लेन-देन···ऊँचे घराने···ऐसी व्यर्थ की

बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।"

"होना भी यूं ही चाहिए", द्वारकादास उसकी बात का समर्थन करते हुए ऊँचे स्वर में बोले, "मुझे तुम्हारी प्रसन्नता का ध्यान है, धन-दौलत और ऊँचे घरानों का नहीं।"

द्वारकादास ने बात का विषय बदल दिया। उनका अनुमान था, कि निर्मल शायद यह समझने लगा है कि उन्हें उसका ब्याह किसी धनवान घराने में करके उसके धन की लालसा थी। किन्तु वह उसे यह समझाने में असमर्थ थे कि उनके मन में जो ज्वाला धधक रही थी वह उसका धुआँ बाहर निकालने से भी घबरा रहे हैं। जब से उन्होंने तरुणा को अपने घर में देखा था उनकी नींद उड़ गई थी। घण्टों बेसुध लेटे वह उसी के विषय में सोचते रहते। डाक्टर होने के नाते उनके मन में कई रहस्य छिपे थे किन्तु; यह रहस्य तो उनके जीवन के लिए बोझा बन गया था—उन्हें क्षण-भर भी चैन न था।

वह यही सोच रहे थे कि नगीना उन्हें खाने के लिए बुलाने आई और वह दोनों उठकर खाने के कमरे में जा पहुँचे। जानकी रसोई घर में थी और तरुणा मेज पर खाने के बरतन जमा रही थी। द्वारकादास को सामने देखकर वह झेंप गई और दृष्टि झुकाकर प्लेटों को आगे-पीछे करने लगी। द्वारकादास ने उसके काँपते हुए हाथों से उसके मन की दशा का अनुमान लगाया और कड़ककर नगीना से बोले—"तुम क्या कर रही हो जो बहू को इस काम पर लगा दिया है।"

तरुणा के हाथ वहीं रुक गये। नगीना अलमारी से अचार का मर्तबान निकाल रही थी। मालिक की आवाज सुनते ही भागी और तरुणा के हाथों से प्लेटें लेकर मेज पर लगाने लगी। तरुणा चुप रही और रसोई घर की ओर जाने को मुड़ी।

"कहाँ चलीं?" निर्मल ने पूछा, और जब वह रुक गई तो बोला, "बैठ जाओ···भाभी खाना लेकर आती होंगी।"

तरुणा अपनी घबराहट छिपाती हुई बैठ गई। निर्मल और

द्वारकादास भी बैठ गये और जानकी की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर में खाना मेज पर लग गया और जानकी भी आ बैठी।

'यह सब गम्भीर बने क्यों बैठे हो ?" जानकी की आवाज ने उन्हें चौंका दिया और सब एक साथ खाने को झुके। जानकी ने सब्जी का डोंगा उठाया तो डाक्टर द्वारकादास ने हाथ बढ़ाया किन्तु जानकी ने डोंगा उन्हें न देते हुए तरुणा को दे दिया और बोली—"अभी नहीं पहले तरुणा फिर दूसरा कोई।"

"लो भाभी ! अब हम भी पीछे रह गये।" निर्मल ने हँसते हुए कहा।

"नये का स्थान प्रथम होता है।"

यह सुनकर तरुणा के गम्भीर मुख पर भी मुस्कराहट दौड़ गई किन्तु डाक्टर द्वारकादास के मुख पर कोई परिवर्तन न हुआ। तरुणा के पश्चात् जानकी ने डोंगा उसकी ओर बढ़ाया और बोली, "आप क्या सोच रहे हैं ?"

"मैं सोच रहा हूँ कि नये का स्थान प्रथम होता है और हम ठहरे पुराने।"

द्वारकादास की इस बात पर सबकी हँसी छूट गई किन्तु तरुणा चुप रही। वह उनकी बात की गहराई नाप रही थी।

पहले कुछ दिन तो वह उनमें बैठकर बड़ी घबराई-सी रहती किन्तु अब वह वातावरण में रंग गई थी और अभ्यस्त हो चुकी थी। अब वह विना बोले-चाले डाक्टर द्वारकादास के सामने बैठी रहती। किसी ने कोई बात कह दी तो उत्तर दे दिया नहीं तो चुप रहती। वह इसी सोच में थी कि किस प्रकार अपने प्रति उनके विचारों को बदले। यूँ कब तक चलेगा।

सब बैठे खाना खाते रहे और निर्मल के सम्बन्ध में सोचते रहे जो कल सवेरे की गाड़ी से जा रहा था। डाक्टर द्वारकादास और

तरुणा के मन में इसके अतिरिक्त एक और विचार घर किए हुए था—दोनों के मध्य उस खाई का विचार जिन्हें शायद वह कभी पाट न सकें।

रात बीतती गई और घर पर धीरे-धीरे उदासी छा गई। निर्मल के चले जाने के बाद घर की रौनक फीकी पड़ जायेगी। द्वारकादास और जानकी अपने कमरे में लेटे यही सोच रहे थे। तरुणा भी निर्मल के वक्ष पर सिर टिकाए धीरे-धीरे आंसू बहा रही थी।

"तरुण ! मेरे चले जाने के बाद भी क्या रोती रहोगी ?" निर्मल ने धीरे-से पूछा।

"नहीं तो...।"

"तो आज क्यों रोये जा रही हो ?"

"आप कल मुझे छोड़ जो जायेंगे।"

"पगली...मैं कल जा तो अवश्य रहा हूँ किन्तु तुम्हें छोड़कर नहीं।"

"तो फिर ?"

"हर रात तुम्हारे सपनों में आया करूँगा।"

"और जो कभी न आये तो..."

"तो उस रात थोड़ा-सा रो लेना।"

निर्मल की बात सुनकर तरुणा रोते-रोते हँसने लगी और उसने अपना मुख उसके वक्ष में छिपा लिया। निर्मल उसके खुले और घने केशों को चूमने लगा।

सवेरे छः बजे ही निर्मल स्टेशन पर पहुँच गया। डाक्टर द्वारकादास और तरुणा उसे विदा करने साथ आये। मोटर में स्थान कम होने के कारण जानकी न आ सकी। तरुणा अकेले जाने से घबरा रही थी। उसे डर था कि वापिसी पर उसे डाक्टर द्वारकादास के साथ गाड़ी में अकेले बैठकर आना पड़ेगा...और यदि उन्होंने रास्ते में उससे कोई ऐसा प्रश्न पूछ लिया जिसका वह उत्तर न दे सकी तो

क्या होगा ? यही विचार उसे चिन्तित किए हुए था। निर्मल भैया से बातें कर रहा था पर बीच-बीच में चोर-दृष्टि से तरुणा की ओर देखकर उसके मन में उठते हुए ज्वार भाटे का अनुमान लगा लेता। तरुणा मलीन मुख आँखें नीची किये अपने विचारों में खोई बैठी थी।

डाक्टर द्वारकादास की भेंट प्लेट-फार्म पर टहलते हुए अपने एक मित्र से हो गई और वह उससे बातें करने लगे। तरुणा निर्मल के डिब्बे के पास खड़ी हो गई। वह अभी तक चुप थी।

"क्या सोच रही हो ?" निर्मल ने पूछा।

"आपके संग यह चार दिन कितने भले कट गये।"

"और आने वाले विरह के दिन इससे भी भले होंगे।"

"ऐसा न कहिए।"

"क्यों ? प्रतीक्षा के बाद मिलन का आनन्द बहुत बढ़ जाता है।"

"यह तो कवियों के शब्द हैं...वास्तविकता क्या है यह आप न जान सकेंगे।"

"कैसे ?"

तरुणा अभी उत्तर न दे पाई थी कि गार्ड ने सीटी बजा दी। प्लेटफार्म पर हलचल-सी मच गई। द्वारकादास भी भागकर निर्मल के डिब्बे के पास पहुँच गये और शीघ्र उसे विदा करने के लिए गले मिलने लगे। निर्मल ने तरुणा की ओर देखा। उसकी पलकें भीग रही थीं, न जाने उनमें कितने आँसू भरे पड़े थे जो उसके चले जाने पर, छाई हुई घटा के समान बरसेंगे। निर्मल भैया के सामने उसका धैर्य बंधाने को और तो कुछ न कह सका बस इतना बोला, "भैया ! भाभी से कहना तरुणा को उदास न होने दे।"

द्वारकादास ने उसका कंधा थपथपाते हुए आश्वासन दिलाया और उसे गाड़ी में बैठ जाने को कहा। गाड़ी ने प्लेटफार्म छोड़ दिया।

जैसे-जैसे गाड़ी की गति तेज होती जा रही थी वैसे-वैसे तरुणा के मन की धड़कन भी बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे गाड़ी आँखों

से ओझल हो गई और वह बड़ी देर तक गाड़ी के उस पिछले डिब्बे को देखती रही जो अब केवल शून्य में लुप्त होता एक धब्बा-सा रह गया था। उसे इस समय कुछ सुध न थी। अचानक डाक्टर द्वारका दास के पुकारने से वह चौंक उठी और उनकी ओर देखकर झेंप गई। यह उसे घर लौटने को कह रहे थे।

उसने अपने को सम्भाला और साड़ी के आँचल से सिर ढाँपते हुए एक दृष्टि उस प्लेटफार्म पर डाली जो गाड़ी चले जाने पर उसके मन की भाँति सूना हो गया था। वह चुपचाप आँखें झुकाये द्वारका दास के पीछे-पीछे चलने लगी।

द्वारकादास के साथ मोटर में बैठे वह एक भय से जकड़ी हुई थी, उसके कानों में अभी तक निरंतर रेलगाड़ी की गड़गड़ाहट गूँज रही थी। अचानक गाड़ी के ब्रेक लगे और वह झटके के साथ थम गई। तरुणा के विचारों की डोर कट गई और वह सहसा सीट पर उछल कर संभली। उसने देखा मोटर डाक्टर द्वारकादास की डिस्पैंसरी के सामने रुकी थी और वह नीचे खड़े उसे उतरने को कह रहे थे।

"आओ...नीचे आ जाओ! यह रहा मेरा छोटा-सा हस्पताल...

"आओ...दिखाऊँ।"

"फिर कभी देख लूँगी...भाभी घर पर अकेली होंगी..." तरुणा ने हिचकिचाते हुए गाड़ी में बैठे-बैठे उत्तर दिया।

"किन्तु; थोड़ी देर तो रुकना ही पड़ेगा...कम्पाउंडर के आते ही तुम्हें छोड़ आऊँगा।"

"आप कष्ट न कीजिए...मैं बस पर चली जाऊँगी।"

"बस पर नहीं मैं स्वयं छोड़ आऊँगा...थोड़ा रुक जाओ।"

तरुणा निरुत्तर हो गई और गाड़ी से नीचे उतर आई। वही स्थान जहाँ आज से तीन वर्ष पूर्व वह रात के अंधेरे में छिपती-छिपती आई थी और डाक्टर द्वारकादास ने उसे बरसते पानी में यह

कहकर निकाल दिया था, "मैं जीवन से प्यार करता हूँ उसकी रक्षा करना जानता हूँ, उसे नष्ट कर देना नहीं।"

और आज भाग्य ने उसे फिर उसी द्वार पर ला खड़ा किया था···किन्तु दूसरे रूप में। वह नीचे उतरी और वहीं अवाक् खड़ी रही। उसके पाँव आगे न बढ़ रहे थे। डाक्टर द्वारकादास ने फाटक के ताले में चाबी डाली और एक साथ दोनों किवाड़ खोल दिये। उन्होंने फिर उसे भीतर आने का संकेत किया और वह डरी-डरी सहमी हुई भीतर आ गई।

इतने बरसों में भी उस स्थान में कोई परिवर्तन न आया। मेज, बेंच, स्ट्रेचर और दवाइयों की अलमारियाँ सब ज्यों की त्यों थीं। आज भी वह इस डिस्पैंसरी में प्रवेश करते हुए पहले दिन के समान घबराई हुई थी। उसके सामने वही बिस्तर था जिस पर डाक्टर द्वारकादास ने उसे लिटा कर उसका निरीक्षण किया था। वह चित्र सहसा उसकी आँखों के सामने आ गया। डाक्टर ने पिछवाड़े की खिड़की खोल दी और कमरे में उजाला हो गया।

"बैठो तरुण—यह है मेरी डिस्पैंसरी···यहाँ भाँति-भाँति के रोगी आते हैं।"

वह घबराई हुई सामने कुर्सी पर बैठ गई। डाक्टर द्वारकादास ने ध्यानपूर्वक उसे देखा। उनकी आँखों के सामने तीन वर्ष पूर्व का दृश्य घूम गया। उस दिन भी उसका मुख यूँ ही पीला था···घबराई हुई थी···वही रूप, वही ढाँचा···वही ढंग···हाँ अन्तर केवल उसकी साड़ी में था···उस दिन वह काली साड़ी पहने हुई थी और आज कत्थई रंग की। डाक्टर द्वारकादास के मस्तिष्क पर चोट-सी लगी। ब्याह वाले दिन वह उसे क्षण-भर के लिए ही देख पाये थे। उसके बाद भी जब खाने या चाय के समय उनकी भेंट हुई तो उन्होंने सबके सामने उसे अधिक ध्यान-पूर्वक देखने का साहस न किया था··· आज उन्होंने पहली बार उसे उसी पुराने रूप में देखा था इस

स्थान और उसके अकेलेपन ने स्थिति को बदल दिया था। उन्होंने एकाएक उस पर दृष्टि गड़ाए हुए सम्बोधन किया।

"तरुण !"

"जी !" वह कंपकंपा गई।

"क्या तुम्हारी कोई बहिन या सखी ऐसी भी है जिसकी सूरत बिल्कुल तुमसे मिलती है ?"

"नहीं।" उसने काँपते हुए स्वर में उत्तर दिया।

"ऐसा ध्यान में आता है कि बिल्कुल तुम्हारी जैसी एक लड़की इसी डिस्पैंसरी में एक रात आई थी…उसने अपना नाम रोजी बताया था।" डाक्टर द्वारकादास ने धीरे-धीरे यह शब्द कहे और ध्यानपूर्वक तरुणा की ओर देखा। घबराहट से उसके शरीर से पसीना छूट रहा था। उसने डाक्टर की बात का कोई उत्तर न दिया और खिड़की के समीप जा खड़ी हुई। डाक्टर ने झट बात बदल दी और स्वयं ही बोले, 'किन्तु; वह तो बहुत पुरानी बात है…लगभग तीन बरस हो गये…न जाने क्यों जब भी मैं तुम्हें देखता हूँ उस लड़की का मुख आँखों के सामने आ जाता है।"

तरुणा चुप रही और धीरे-धीरे पाँव उठाती कमरे से बाहर आ गई। डिस्पैंसरी में उसकी साँस घुट रही थी। बाहर आकर वह गमलों में लगे हुए फूलों को देखने लगी। डाक्टर द्वारकादास ने उसे अधिक कुरेदना उचित न समझा और मेज पर रखा समाचार पत्र उठा कर देखने लगे।

इसी समय दो आदमी डिस्पैंसरी में आ गये और डाक्टर द्वारकादास उनसे बातचीत करने लगे। तरुणा की रुकी हुई साँस फिर से चलने लगी। उसने माथे पर आया हुआ पसीना पौंछा और आँख बचाकर फाटक से बाहर सड़क पर आ गई।

डाक्टर द्वारकादास ने तरुणा को सड़क पर एक रिक्शा वाले को ठहराते हुए देखा और फिर पास बैठे रोगियों का निरीक्षण करने

लगे। तरुणा की घबराहट और उसके व्यवहार से उनका भ्रम विश्वास में परिवर्तित हो गया था कि तरुणा वही लड़की है जो रोजी बनकर उनके यहाँ आई थी। आज फ़िर उनकी डिस्पेंसरी में पाँव रखते ही उस दिन वाली बात उनके मस्तिष्क पट पर उजागर हो गई थी···धुंधली रेखायें स्पष्ट हो गई थीं। क्षण-भर के लिए उनके मन में आया कि तरुणा को आवाज देकर रोक लें किन्तु फिर विचार कर चुप रहे और काम में लग गये।

तरुणा जब घर पहुँची तो जानकी स्नानगृह में थी। वह चुप-चाप अपने कमरे में आई और भण्डार का किवाड़ खोलकर उसमें जा लेटी। वह किसी से बात न करना चाहती थी। उसे कुछ सूझ न रहा था कि वह क्या करे। निर्मल होता तो मन लगाने के सौ मार्ग थे किन्तु अब···अब वह अकेली इस बौछार का कैसे सामना करे—वह लेटे-लेटे रोने लगी। निःसहाय और विवश व्यक्ति को आँसुओं में ही एकमात्र सुख मिलता है।

धूप तेज हो गई और तरुणा गठरी बनी भंडार में ही लेटी रही। जानकी को ज्ञात भी न हुआ कि वह घर में लौट आई है। नगीना ने उसके कमरे में झाड़ू लगाई और उसे पता भी न चला कि वह भंडार में बेसुध लेटी पड़ी है। जानकी यह सोच रही थी कि शायद वह उनके साथ डिस्पेंसरी में ही रुक गई है। उसने दो एक बार सोचा कि पड़ोस से जाकर टेलीफोन कर पूछ ले किन्तु फिर यह विचार करके कि वह रोगियों में व्यस्त होंगे वह चुप हो गई।

खाने का समय समीप आ रहा था और जानकी उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। थोड़े-थोड़े समय बाद वह खिड़की में से झांककर सड़क पर देखती कि शायद उनकी गाड़ी आ रही हो। तरुणा ने सवेरे से कुछ न खाया था और उसे इस बात की चिन्ता थी कि वह भूखी होगी।

हार्न की आवाज सुनकर वह झट बाहर निकल आई। डाक्टर

द्वारकादास आज कुछ शीघ्र ही आ गये थे। जानकी ने उन्हें गाड़ी से अकेले उतरते देखकर आश्चर्य से पूछा—

"तरुणा को कहाँ छोड़ आये ?"

"तरुण को ?" उन्होंने एकाएक चौंकते हुए उसी के शब्द दोहराए और फिर आश्चर्य से इधर-उधर देखते हुए बोले, "तो क्या वह घर नहीं आई ?"

"नहीं तो···"

"वहाँ से तो सवेरे ही चली आई थी।"

"किस के साथ ?'

"अकेली···रिक्शा पर···"

"आप भी अजीब हैं···गाड़ी पर छोड़ जाते तो क्या···"

"मैंने तो उसे थोड़ा रुक जाने को कहा था किन्तु; वह बिना कुछ कहे स्वयं ही चली आई।"

"न जाने कहाँ चली गई ?" वह बुड़बुड़ाई।

दोनों चुप हो गये। डाक्टर द्वारकादास गहरी चिन्ता में खो गये। उनकी समझ में न आ रहा था कि वह कहाँ चली गई। कहीं उन की बातों से घबराकर न चली गई हो। कोई संबंधी भी तो यहाँ नहीं उसका···सम्भव है किसी सखी के यहाँ चली गई हो। जानकी एक बार फिर उठी और उसके कमरे में देख आई किन्तु; वहाँ कोई होता तो दिखाई देता। दोनों विस्मित से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

नगीना ने खाना लगा दिया और उन्हें सूचना देने के लिए आई। दोनों ने एकसाथ पहले नगीना की ओर देखा और फिर दूसरे की ओर।

"अभी ठहरो···मैं थोड़ी देर में आया।" डाक्टर द्वारकादास ने कुर्सी से उठते हुए कहा।

"कहाँ चले ?"

"उसे ढूँढ़ने···न जाने कहाँ चली गई ?"

"खाना तो खा लीजिए···सम्भव है अभी आती हो ?"

"पर चली कहाँ गई ?"

"आप शीघ्र खा लीजिए···मैं भी आपके साथ चलती हूँ।"

दोनों अनमने मन से खाने की मेज पर बैठ गए और नगीना खाना परोसने लगी। उसी समय नगीना किसी कार्यवश भंडार में गई और तुरन्त भागकर बाहर निकलती हुई घबराये हुए स्वर में बोली—

"मालकिन ! वह मिल गई—वह मिल गई।"

"कौन ?"

'बहूजी।"

"कहाँ है ?" दोनों ने एक साथ पूछा।

"भडार में।"

"भंडार में ? वहाँ क्या कर रही है ?"

"सो रही हैं।"

"नगीना का उत्तर सुनने से पूर्व ही दोनों क्षण भर में भंडार में पहुँच गये। तरुण बिस्तरों के पलंग पर बेसुध औंधी लेटी हुई थी। उसके घने बाल खुले हुए थे। दोनों उसे इस दशा में देखकर ठिठककर वहीं खड़े हो गये। क्षण भर रुककर जानकी ने पास जाकर उसे धीरे से झंझोड़ा और पुकारने लगी ?

"तरुण ! तरुण !"

तरुणा ने एकाएक आँखें खोल दीं और करवट बदल कर उसकी ओर देखने लगी। उसके होंठ कुछ कहने को हिले किन्तु आवाज न निकल सकी। जानकी ने अपने आँचल से उसके माथे का पसीना पोंछा और बोली—

'यहाँ क्यों सो रही हो ?"

तरुणा ने घबराये हुए दृष्टि घुमाकर कमरे में देखा और सामने डाक्टर द्वारकादास को देखकर काँप-सी गई और झट आँचल से अपने

शरीर को लपेटते हुए उठकर बैठ गई। जानकी ने उसके बालों को समटते हुए उसमें गांठ लगाई और अपना प्रश्न दोहराया।

"यूँ ही नींद आ गई।" तरुणा ने धीमे स्वर में कहा।

"स्टेशन से कब लौटीं···हम तो सवेरे से चिन्ता में हैं।"

"सवेरे ही आ गई थी।"

"मन तो ठीक है ना।"

"हाँ भाभी···यूँ ही नींद आ गई थी।"

"क्या रात भर सोई नहीं?" जानकी ने मुस्कराते हुए पूछा।

तरुणा यह सुनकर लजा गई। डाक्टर द्वारकादास उसे देखकर वापस लौट गये। उनके मन की चिन्ता तो तरुणा को देखकर समाप्त हो चुकी थी किन्तु; धड़कन अभी तक चल रही थी।

जानकी तरुणा को साथ लेकर खाने की मेज पर आ गई और तीनों खाना खाने लगे। तरुणा की आँखों की सूजन यह बता रही थी कि वह सोई नहीं बल्कि रोती रही है। डाक्टर द्वारकादास ने वातावरण की गम्भीरता को हल्का करने के लिए तरुणा का नाम लेकर पुकारा और मुस्कराते हुए बोले—"मुँह पर पानी के दो-एक छींटे ही लगा लो···ऐसा लगता है जैसे सोकर नहीं रोकर उठी हो।"

तरुणा उठी और बाहर जाने लगी। जानकी ने पति की बात का समर्थन करते हुए कहा, "हाँ बिचारी रोती रही होगी···मिलन के बाद पहली बार बिछोह जो हुआ है।"

डाक्टर द्वारकादास खिलखिलाकर हँस पड़े और फिर तीनों खाने में लग गए।

चार

"तरुणा !"

"हाँ भाभी !"

"मुँह मीठा कराओ तो एक बात बताऊँ।" जानकी ने मुस्कराते हुए कहा।

"क्या बात है ?" तरुणा के मौन मुख पर आभा आ गई।

"निर्मल का पत्र आया है।" यह कहते हुए जानकी ने उसे दूर से पत्र दिखाया।

"ओह ! मैं समझी जाने क्या..."

"उसका पहला पत्र आया है और तू कहती है जाने क्या..." यह कहते हुए जानकी ने पत्र आँचल में छिपा लिया और बाहर जाने को मुड़ी। तरुणा ने उसकी राह रोक ली।

"यह क्या ? फिर ले लेना।"

"अब दे दो ना भाभी !" प्रार्थना भरे स्वर में तरुणा ने उसकी ओर देखते हुए कहा। जानकी ने देखा उत्सुकता ने उसकी आँखों में एक चमक उत्पन्न कर दी थी...दुल्हन को परदेस में गए प्रीतम के पहले पत्र की कितनी प्रतीक्षा होती है। उसने मुस्कराते हुए आँचल में लपेटा हुआ पत्र निकालकर उसे दे दिया और बोली—"पढ़कर शीघ्र आ जाओ...हम लोग खाने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

जानकी चली गई तो तरुणा ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा और लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ने लगी। पत्र डिस्पैंसरी के पते पर भेजा गया था।

जब वह खाने की मेज पर पहुँची तो डाक्टर द्वारकादास पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। जानकी रसोईघर में थी। उन्हें मेज पर अकेले बैठा देखकर वह क्षण भर के लिए झेंप-सी गई और रसोई घर की ओर जाने लगी। डाक्टर द्वारकादास ध्यानपूर्वक उसकी घबराहट को निहार रहे थे। उसे आते देख बोले—

"निर्मल का पत्र आया था ?"

"जी।" उसने वहीं रुकते हुए कांपते स्वर में उत्तर दिया।

"क्या लिखा है ?"

"कुशल पूर्वक पहुँच गए हैं।"

"और क्या लिखा है ?" जानकी ने सामने आते हुए प्रश्न किया।

भाभी को देखकर तरुणा की घबराहट कुछ दूर हो गई और बोली—

"लिखा है भाभी दिन-रात याद आती हैं।

"झूठी कहीं की··· याद मेरी आती है और पत्र पत्नी को लिख रहा है।"

"और क्या करता···जानता है भाभी अनपढ़ है।" डाक्टर ने पत्नी को छेड़ते हुए बीच में कहा। जानकी नाक-भौं चढ़ाती हुई फिर रसोई में चली गई। डाक्टर द्वारकादास खिलखिलाकर हँसने लगे। उन्होंने देखा इस हँसी में तरुणा भी उनका साथ दे रही थी।

जानकी खाना ले आई, तरुणा भी उसका हाथ बटाने लगी और तीनों चुपचाप खाना खाने लगे। कमरे के मौन को कभी-कभी तरुणा की खनखनाती हुई चूड़ियों का शब्द भंग कर देता।

"मेरे लिए क्या लिखा है ?" अचानक डाक्टर द्वारकादास ने ग्रास तोड़ते हुए पूछा।

"आपको उन्होंने अलग पत्र लिख दिया है।"

"ओह···तो यह भी लिख दिया उसने तुम्हें।" वह तरुणा का उत्तर सुनकर मुस्कराते हुए बोले। जानकी भी मुस्कराने लगी।

हर दिन का आपस का मेल मिलाप, बातचीत और हल्का-हल्का हँसी-मजाक डाक्टर द्वारकादास और तरुणा के बीच की खाई को धीरे-धीरे कम करता जा रहा था। इसमें अधिक हाथ जानकी का था जो वातावरण को कभी अधिक गम्भीर और नीरस न होने देती। फिर भी जब वह कमरे में न होती और दोनों का आमना-सामना हो जाता तो दोनों मूर्ति बने एक दूसरे के सम्मुख खड़े हो जाते और उनके मुँह से एक अक्षर न निकलता। ऐसी स्थिति आ जाती तो तरुणा कोई बहाना बनाकर दूसरे कमरे में चली जाती।

निर्मल अभी तक मकान का प्रबन्ध न कर पाया था और तरुणा के लिए निरन्तर यूँ घुटे-घुटे रहना कठिन हो रहा था। उनके विवाह को एक महीना हो गया था और वह आश्रम में न जा सकी थी। वह अपने बच्चे को देखने के लिए व्याकुल हो रही थी। वह घर से क्षण-भर के लिए भी अकेले बाहर न निकल सकती थी, जानकी या नगीना सदा उसके साथ रहतीं। एक बार तो उसने सोचा कि नगीना को अपना रहस्य बताकर विश्वास में ले ले किन्तु फिर उससे कहने का साहस न हुआ।

एक शाम डाक्टर द्वारकादास समय से पहले ही लौटा आए और जानकी को सनेमा जाने के लिए तैयार होने को कहने लगे। जानकी ने तरुणा को भी चलने के लिए कहा किन्तु; उसने सिर दर्द का बहाना बनाकर साथ चलने से इन्कार कर दिया।

"तुम न जाओगी तो मैं भी न जाऊँगी।" जानकी उसके इन्कार से निराश होते बोली।

"भाभी! ऐसा न करो···आज कितने दिनों बाद तो वह इस समय घर लौटे हैं···यदि तुम न जाओगी तो उनका मन टूट जायेगा।"

'तुमसे यह किसने कहा?"

"सुना है पुरुष का हृदय ही ऐसा होता है···ऊपर से कठोर

और भीतर से कोमल।"

"किन्तु उनका नहीं···वह साधारण पुरुषों से भिन्न हैं··· वह अपने हृदय को पत्थर बनाना जानते हैं।"

तरुणा चुप हो गई। जानकी उसे देखती रही और फिर बोली—"अच्छा तुम कहती हो तो चली जाती हूँ, किन्तु तुम्हारे बिना जाने को मन नहीं चाहता।"

जब वह दोनों चले गए तो तरुणा ने सान्त्वना की साँस ली और पाँव फैलाकर आराम कुर्सी पर लेट गई। आज पहली बार वह घर में अकेली थी और मस्तिष्क से एक बोझ सा उतरा हुआ अनुभव कर रही थी। नगीना रसोई घर में अपने काम में व्यस्त थी। वह चाहती भी यही थी कि कोई उसकी शान्ति को भंग न करे। आज ही उसे अकेले में सोचने का अवकाश मिला था।

बड़ी देर तक मौन बैठी वह सोचती रही कि क्या करे। पढ़ने को पत्रिका उठाई किन्तु कुछ पन्ने उलटकर फिर उसे मेज पर रख दिया। रेडियो चलाने को हाथ बढ़ाया और फिर कुछ सोचकर रुक गई। एकाएक उसके मन में एक विचार ने अंगड़ाई ली और वह खड़ी हो गई। उसने सोचा क्यों न इस समय वह आश्रम में जाकर अपने 'सूरज' को ही देख आए। यह विचार आते ही उसका ममत्व उमड़ आया और आकांक्षा के सोये हुए तार फिर झंकरित हो उठे।

उसने खिड़की में से झाँककर देखा। इससे अच्छा अवसर उसे न मिल सकता था। उसने शीघ्र साड़ी बदली, सिर पर शाल ओढ़ी और रसोई में आकर नगीना से बोली—'नगीना मैं थोड़ी देर के लिए बाहर जा रही हूँ।"

'नगीना उसे कपड़े बदले हुए देखकर आश्चर्य में थी। पूछने लगी—

"कहाँ बीबी जी?"

"यहीं एक सखी के यहाँ···अभी लौट आऊँगी···तुम घर का

ध्यान रखना।"

"कहीं दूर जाना हो तो मैं साथ..."

"नहीं दूर नहीं...यहीं पास जा रही हूँ...तू खाना तैयार कर, मैं शीघ्र लौट आऊँगी।"

यह कहकर तरुणा घर से बाहर आ गई और एक रिक्शा में बैठकर आश्रम चल दी। आज एक महीने के बाद वह अपने लाल से मिलने जा रही थी। ममता ने शेष सब विचारों और भावनाओं को पीछे छोड़ दिया था।

तेजी से आश्रम का फाटक पार करके वह भीतर आई और दफ्तर के बाहर खड़ी होकर भीतर झाँकने लगी। आश्रम की वार्डन ने उसे देख लिया और उठकर उसकी ओर आते हुए बोली—

"आओ तरुण ! बधाई हो।"

"दीदी ! तुम मुझसे रुष्ट तो नहीं हो।" तरुणा ने लजाते हुए धीरे से पूछा।

"नहीं तरुणा ! तुमने बहुत अच्छा किया जो विवाह कर लिया...विश्वास रखो मैं अति प्रसन्न हूँ...तुम्हारे पति कहाँ हैं ?"

"फिरोजपुर...सेना में अफसर हैं। मुन्ना कैसा है दीदी ?"

"ठीक है...हाँ कभी-कभी उदास होकर रोने लगता है।"

तरुणा ने 'दीदी की पूरी बात भी न सुनी और उस कमरे की ओर बढ़ी जहाँ उसके सूरज की चारपाई थी। दीदी भी उसके साथ थी। कमरे में बहुत से बच्चों के रोने की ध्वनियाँ आ रही थीं। तरुणा उत्सुकतापूर्वक बारी-बारी हर बच्चे पर दृष्टि डालने लगी। उसकी आँखें सूरज को ढूँढ़ रही थीं।

दीदी ने उसका ध्यान सामने झूले की ओर आकर्षित किया जहाँ एक नन्हा सा बच्चा खिलौने से खेल रहा था तरुणा का मन भर आया और उसकी डबडाई आँखों से आँसू छलक पड़े। वह अनायास उस ओर लपकी और स्नेह से उसने बच्चे को बाँहों में उठा

लिया और उसका मुंह चूमने लगी।

उसका मन अति प्रसन्न था। उसने बच्चे को छाती से लगा लिया और धीरे-धीरे उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरने लगी। आंसू उसकी आंखों से मोतियों के समान एक-एक करके टपकते रहे…वह कितनी विवश थी। मां होते हुए भी वह अपने हृदय के टुकड़े से दूर थी। बच्चे को थपथपाते हुए उसने मधुर स्वर में एक लोरी गुनगुनानी आरम्भ की जिसके शब्दों में एक विशेष मिठास थी…ऐसी मिठास जो उपवन में से गुजरते हुए मलयानल में आ जाती है…जो फूलों को नव-जीवन का सन्देश देती है। लोरी सुन· कर दूसरे पालनों में लेटे हुए बच्चे भी हाथ पांव फैलाने लगे। वह मधुर गुनगुनाहट उनकी आंखों में निद्रा का उन्माद भरने लगी।

मां की छाती से लगा नन्हा सो गया था। तरुण-उसे झुलाना छोड़ उठी और धीरे-से उसे वहीं सुलाकर कमरे से बाहर आ गई। बाहर आते ही क्षण भर के लिए उसके पांव रुक गए और उसने एक बार मुड़कर फिर कमरे पर दृष्टि डाली। उसका सूरज सो रहा था। एक बार फिर उसकी आंखों में आंसू उमड़े किन्तु; शीघ्र ही उसने मुंह मोड़ा और चलने लगी।

दीदी ने बेबस मां की ममता के आंसुओं को देख लिया और उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोली—

"तरुण ! मन छोटा मत करो…कष्ट तो कट गया…अब तो तुम्हें हंसना चाहिए…"

"दीदी ! मुन्ने के बिना हँसी खोखली रह जाती है।"

"तुमने तो कहा था ब्याह के बाद मुन्ने को ले जाओगी।"

"कहा तो था दीदी ! किन्तु; बात पूरी होने के लिए समय चाहिए।" वह दीदी के हाथ को अपने हाथों में लेती। बोली दीदी क्षण भर के लिए चुप खड़ी उसकी आंखों में देखती रही और फिर उसे गले से लगाते हुए कहने लगी, "तरुण ! तुम्हारी दीदी भी उसे

अपना ही लाल समझकर पाल रही है।"

तरुणा जब फाटक से बाहर निकली तो उसका कलेजा भय से धड़क रहा था। उसने कलाई पर बंधी घड़ी को देखा। नौ बजा ही चाहते थे। समय बीतते देर न लगी थी और सिनेमा समाप्त होने का समय ही था। वह तेजी से खुली सड़क पर पहुँची और एक खाली रिक्षा पर बैठकर रिक्शा वाले को शीघ्र चलाने का आदेश दिया। न जाने क्यों उसे यूं अनुभव हो रहा था मानो वह कोई अप-राध करके लौट रही है।

घर पहुँचकर ज्योंही वह फाटक से भीतर आई बरामदे में जानकी को खड़ा देखकर उसके पाँव तले की धरती खिसक गई। उसकी घबराई हुई दृष्टि चारों ओर घूम गई। डाक्टर द्वारकादास खाने की मेज पर बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

जानकी ने शंकामयी दृष्टि से उसे देखा और कुछ कहने को होंठ हिलाना ही चाहती थी कि तरुणा तेजी से अपने कमरे में चली आई। कमरे में पहुँचकर उसने शरीर से शाल उतार कर एक ओर फैंकी और घबराहट पर अधिकार पाने का प्रयत्न करने लगी। भाभी की घर में उपस्थिति ने उसे विस्मित कर दिया था। थोड़ी देर बाद नगीना उसके कमरे में आई और बोली—

"खाने के लिए बुलाया है।"

"ओह...मैं आती हूँ...अभी...हाँ नगीना! भाभी भैया कब लौटे?'

"आपके जाने के तुरन्त बाद ही।"

"तो क्या..."

"सिनेमा के टिकट नहीं मिले तो लौट आये।"

यह सुनते ही तरुणा के मस्तिष्क पर चोट-सी लगी और क्षण-भर के लिए उसकी सोचने की शक्ति रुक गई। वह स्तब्ध उसे देखती रह गई। नगीना ने उसे फिर पुकारा तो जटिल स्थिति उसकी आँखों

के सामने घूम गई···यह क्या हो गया ?···भैया क्या सोचते होंगे ? भाभी ने तभी तो उससे कोई प्रश्न नहीं किया···उनकी आँखों में शंका कितनी स्पष्ट थी···।

बिना और कोई बात किए वह सिर नीचा किए नगीना के पीछे-पीछे खाने के कमरे में पहुँची, जैसे अपराधी न्यायाधीश के सामने आए और डर रहा हो कि क्या निर्णय होगा।

डाक्टर द्वारकादास ने उसे देखा और फिर आँखें झुका लीं। वह किसी गहरे विचार में डूबे शायद उसी के विषय में सोच रहे थे। तरुणा ने धीरे-से कुर्सी खींची और बैठ गई। भाभी भी खिची-खिची बैठी थी। तरुणा ने सब्जी का डोंगा उठाया और भैया और भाभी की प्लेटों में डालने लगी।

"आप शीघ्र ही लौट आये!" तरुणा ने जानकी से आँखें मिलते ही पूछा।

"टिकट नहीं मिले···हम तो उसी समय लौट आए थे।" जानकी के उत्तर देने से पूर्व ही डाक्टर द्वारकादास ने कहा। तरुणा ने इन शब्दों में एक चुभन सी अनुभव की।

"तुमने झूठ जो कहा था, इसलिए टिकट नहीं मिले।" जानकी के स्वर में बलपूर्वक उत्पन्न की गई कठोरता थी।

तरुणा विस्मय से उसे देखने लगी। और फिर विनम्र बोली—"नहीं भाभी···"

"सिर में पीड़ा है···सखी के यहाँ जाने में पीड़ा नहीं हुई।"

तरुणा ने कोई उत्तर न दिया।"

"किसी से मिलना था तो कह दिया होता···मिलने-जुलने के लिए हमने कोई रोक तो नहीं रखा।" डाक्टर द्वारकादास उसे चुप देखकर बोले।

"नहीं ऐसी कोई बात नही···यूँ ही बैठे-बैठे मन न लगा, सोचा थोड़ा घूम ही आऊँ।"

"कौन है तुम्हारी सखी ? कभी तुम्हें मिलने नहीं आई ?"

डाक्टर द्वारकादास की इस बात ने उसे चकरा दिया और वह झेंप गई। उन्होंने उसकी घबराहट को तोला और फिर मुस्कराते हुए स्वयं ही बोले—

"कभी उसे भी अपने यहाँ बुला लो···लड़कियों को अपनी सखियों की सुसराल देखने का बड़ा चाव होता है।"

तरुणा ने कोई उत्तर न दिया और खाना खाने लगी। धीरे-धीरे वातावरण का खिंचाव घटने लगा। जानकी ने निर्मल की बातें छेड़ दीं। इसी बीच में फल लाने के लिए जानकी को साथ वाले कमरे में जाना पड़ा और मेज पर तरुणा और डाक्टर द्वारकादास दोनों ही रह गये। तरुणा को उनके सामने अकेले बैठे हुए घबराहट-सी होने लगी। जानकी ने वापस लौटने में कुछ देर लगा दी थी। वह बार-बार मुड़कर उधर देखती जिधर जानकी गई थी।

सहसा डाक्टर द्वारकादास ने उसे पुकारा, "तरुण।"

"जी।" वह हड़बड़ा कर उनकी ओर देखते हुए बोली। इसी से वह डर रही थी।

"कानपुर बहुत बुरा शहर है।" पानी का खाली गिलास मेज पर जमाते हुए वह बोले, "यूँ अकेले बाहर जाना अच्छा नहीं। यदि कभी जाना आवश्यक ही हो तो किसी को साथ लेकर जाया करो।"

उन्होंने बात पूरी की ही थी कि फलों की प्लेट लिए जानकी आई और तरुणा की ओर बढ़ाते हुए बोली, "लो! संतरा छीलो।" तरुणा अवाक् बैठी सोच रही थी कि भैया की बात का क्या उत्तर दे। जानकी को देखकर उसकी धमनियों में रुका हुआ लहू फिर से चलने लगा। उसने संतरा छीलकर दूसरी प्लेट में रख दिया और छुरी उठाकर सेब काटने लगी।

"ऊँ हूँ हूँ···कहीं उँगली काट लोगी···यह मुझे दे दो। जानकी ने छुरी उसके हाथ से लेते हुए कहा। डाक्टर द्वारकादास

मुस्कराने लगे।

"हाँ देखिए ना···कहीं उंगली काट ली तो वह मुझे कोसेगा··· निर्मल···जानते हैं जाते समय मुझसे कह गया था, भाभी ! तरुणा को तुम्हें सौंपे जा रहा हूँ···इसे कोई कष्ट हुआ तो बस समझ लेना तुम्हें न छोड़ूँगा।" पति को मुस्कराते हुए देखकर जानकी ने अपनी बात पर बल दिया।

डाक्टर द्वारकादास बनावटी हँसी हँसने लगे। तरुणा लजा गई और चुपके से उठकर अपने कमरे में लौट आई।

यद्यपि वह इस प्रकार के वातावरण की कुछ अभ्यस्त हो गई था तथापि उसका मन न सम्भला। सबके संग वह हँसती भी थी किन्तु मन के भीतर का भय वही था। डाक्टर द्वारकादास का व्यवहार उसे समझ न आता। वह कभी तो कोई ऐसा चुभता हुआ वाक्य कह देते जो उसे घण्टों चिन्ताग्रस्त रखता और कभी कोई हँसी-मजाक की ऐसी बात कह देते जो गम्भीर मुख पर मुस्कान के फूल बिखेर देती। वह विचित्र असमंजस में जकड़ी हुई थी। निर्मल की याद, अपने बच्चे का विचार और हर समय भैया का भय जो बारूद के समान उसके सिर पर छोटी चिंगारी से भी एक धमाका बनकर फट पड़ने को तैयार था। परिस्थितियों ने उसकी जीवन-नौका को एक भंवर में लाकर छोड़ दिया था जो न तो डूबती थी और न किनारे लगती थी। कभी-कभी चिन्ता के बादल इतने घने हो जाते कि उसे स्वयं से और पूरे मानव-समाज से घृणा होने लगती।

कितने दिनों से वह अपने बच्चे को देखने न जा सकी थी। कभी-कभी चोरी-छिपे टेलीफून पर आश्रम से उसकी कुशलता पूछ लेती। एक दिन आश्रम की वार्डन ने उसे बताया कि उसका सूरज बुखार में बेसुध पड़ा है।

माँ की ममता व्याकुल हो उठी। माता-पिता के होते हुए उसका लाल दूसरों के आश्रम में था, तभी तो वह बीमार हो गया···तरुणा

से रहा न गया और एक सखी से मिलने का बहाना करके उसने जानकी से बाहर जाने की अनुमति ले ली। यह सोचकर कि कहीं भैया-भाभी कोई सन्देह न करें उसने नगीना को साथ ले लिया।

"कहाँ चलियेगा ?" नगीना ने उसके साथ रिक्शा में बैठते हुए पूछा।

"चौक बाजार।"

"कितनी देर ठहरियेगा ?"

"कोई आध घण्टा।"

"यदि आप आज्ञा दें तो मैं थोड़ी देर के लिए अपने चाचा से मिल लूँ......वह भी इसी गली में रहते हैं......अधिक समय नहीं लगाऊँगी।"

तरुणा मुस्करा पड़ी और उसे आज्ञा दे दी।

चौक बाजार में पहुँचकर तरुणा ने रिक्शा छोड़ दी और पर्स से दो रुपए निकाल कर नगीना को देते हुए बोली—

"यह लो बच्चों के लिए कुछ ले जाना—और हाँ, आध घण्टे बाद मुझे यहीं मिलना।"

आश्रम में पहुँचते ही उसने अपने बच्चे को छाती से लगा लिया और दीदी पर प्रश्नों की बौछार कर दी। बच्चे का शरीर तप रहा था। दीदी ने बताया कि डाक्टर देख गया है, चिन्ता का कोई कारण नहीं। आशा है कि शाम तक बुखार उतर जायेगा।

नगीना आध घण्टे से पहले ही चौक में आ खड़ी हुई और तरुणा की प्रतीक्षा करने लगी। तरुणा को आने में देर हो गई थी। जब वह चौक में पहुँची तो नगीना बेचैन और घबराई हुई इधर-उधर झांक रही थी।

"कब आई तुम ?" तरुणा ने आते ही प्रश्न किया।

"बड़ी देर हो गई। किन्तु; बीबीजी ! अच्छा नहीं हुआ।"

"क्या ?"

"मैं चाचा को देखकर गली से बाहर आ रही थी कि सामने के मकान से मालिक निकलते दीख पड़े।"

"क्या कह रही है ?" चौंकते हुए तरुणा ने पूछा।

"हाँ, बीबीजी···किसी रोगी को देखने आये थे।"

"तो क्या कहते थे ?"

"पूछते थे कहाँ गई हैं ?"

"तो ······"

"मैंने कह दिया मुझे छोड़कर किसी सखी से मिलने गई हैं।"

तरुणा चुप हो गई। नगीना लगककर रिक्शा ले आई। रास्ते भर तरुणा ने कोई बात न की। वह लगातार सोचती रही न जाने भैया क्या भ्रम करते होंगे। कैसी-कैसी शंकाए उनके मन में उठती होंगी। वह स्वयं भी तो उनसे कुछ न कह सकती थी। यदि उन्होंने उसकी सखी का नाम पता पूछ लिया तो वह क्या उत्तर देगी इस विचार से वह व्याकुल हो गई और हथेली पर सिर रखकर सोचने लगी। आखिर ऐसी कौन-सी विवशता है जो वह उसके मन की हर बात जानना चाहेंगे ? क्या वह कोई अजीब है। अब तो वह विवाहित स्त्री है···अपने भले-बुरे का उसे ज्ञान है···उसे स्वयं अपने लिए भी कुछ सोचना है। उसे अपनी आवश्यकताओं की स्वयं पूर्ति करनी है।

वह सोचने लगी कि उन्हें क्या अधिकार है कि उसकी हर बात पर कड़ी दृष्टि रखें, उसके हर उठते पग की जाँच करें। यदि उन्होंने कोई ऐसी बात उससे कही तो वह वहाँ से चली जायेगी। यह बातें स्वयं ही उसके मस्तिष्क ने उसके घबराए मन को सान्त्वना देने की सोची किन्तु उसका भय ज्यों का त्यों बना रहा, बल्कि वह बढ़ता ही गया। उसने कौन-सा पाप किया है ? उसे क्यों इतना कठोर दण्ड मिल रहा है ? रास्ते में एक बार उसे विचारमग्न देखकर नगीना ने बात भी की किन्तु तरुणा ने कोई उत्तर नहीं दिया और

चुपचाप किसी चिन्ता में खोई रही। वह स्वयं सोचों में खोई यह भूल ही गई कि कोई और भी उसके साथ बैठा हुआ है।

रात को जब भैया घर लौटे तो वह अपने कमरे में थी। उनके सामने उसे जाने का साहस न हो रहा था। भाभी संध्या की पूजा में व्यस्त थी। भैया अपने कमरे से निकलकर उसके कमरे के सामने आ खड़े हुए और ऊँचे स्वर में नगीना को पुकारकर पूछने लगे—"जानकी कहाँ है ?"

"भगवान् की पूजा कर रही हैं।"

"और तरुणा।"

अपना नाम सुनकर तरुणा का कलेजा धड़कने लगा।

"अपने कमरे में।" नगीना यह बताकर रसोई घर में पहुँच गई। डाक्टर द्वारकादास तरुणा के कमरे के पास खड़े होकर बोले—"तरुण।"

तरुणा सिर से पांव तक कांप गई और भीतर से ही उसने उत्तर दिया, "जी।"

"यहाँ आओ······"

तरुणा डरती-डरती सामने आई कि न जाने क्या कहेंगे। डाक्टर द्वारकादास ने उसकी घबराहट को निहारते हुए कहा, "लो ! तुम्हारा पत्र है।"

आँखें झुकाए वह उनके सामने खड़ी हो गई और पत्र लेने को हाथ बढ़ाया। डाक्टर ने देखा पत्र लेते समय उसकी उँगलियाँ काँप रही थीं बोले, "तरुण ! यह भीतर कमरे में बैठी क्या करती रहती हो। यूँ तो स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा···किसी समय भाभी को साथ लेकर बाग तक थोड़ा घूम आया करो।"

"कई बार कहा है चलने को किन्तु, बहू रानी बस कमरे की छत और दीवारों को नापती रहती हैं" जानकी पूजा करके बाहर निकली और मुस्कराते हुए अपने पति की बात का उत्तर देने लगी।

"जैसी तुम आलसी वैसी यह···कल से तुम लोगों को बलपूर्वक भिजवाना पड़ेगा।" डाक्टर द्वारकादास ने कहा और जानकी के साथ अपने कमरे में चले गये।

उनके चले जाने पर तरुणा का भय दूर हो गया।

आज भैया का मूड बिगड़ा हुआ न था। उन्होंने उसके जाने के विषय में कोई प्रश्न भी न किया था। इस बात ने उसके मन का बोझ कुछ हल्का कर दिया और वह बिस्तर में लेट कर निर्मल का प्रेम पत्र पढ़ने लगी। प्रेम के शब्द उसके हृदय को गुदगुदाने लगे। कुछ क्षण के लिये उसे यूँ अनुभव हुआ मानो वह उसके पास बैठा उससे बातें कर रहा हो।

आज सवेरे तरुणा घर पर अकेली थी। जानकी और डाक्टर द्वारकादास किसी प्रियजन की मृत्यु पर अलीगढ़ गये हुए थे। दिन तो ज्यों-त्यों कट ही गया था किन्तु; संध्या होते ही तरुणा का मन डरने लगा। आज पहली बार वह इतने बड़े मकान में अकेली थी। नगीना अपने काम में लगी थी और वह अपने कमरे में बैठी एक उपन्यास देख रही थी।

अभी अंधेरा हुआ ही था कि बाहर आहट हुई और किसी ने नगीना को पुकारा। तरुणा ने खिड़की का पर्दा हटाकर देखा। डाक्टर द्वारकादास अलीगढ़ से लौट आये थे। भाभी को उनके संग न देखकर वह निराश हो गई।

घर में न जाने क्यों भैया के आते ही उसके शरीर में एक तनाव-सा भर जाता, उसके मस्तिष्क पर हल्की-हल्की चोटें लगने लगतीं और वह स्वयं में खो जाती। भैया ने आते ही नगीना को पानी का गिलास लाने को कहा और अपने कमरे में चले गये। तरुणा कुछ देर चुपचाप अपने कमरे में खड़ी रही और जब नगीना पानी का गिलास उधर से लेकर गुजरी तो उसने उसे ठहराकर स्वयं पानी का गिलास उसके हाथ से ले लिया और भैया को देने के लिए उनके कमरे के

सामने आ खड़ी हुई। उसने सोचा इसी बहाने भाभी के मायके में हुई मृत्यु का शोक भी प्रकट हो जायेगा।

डाक्टर द्वारकादास दूसरी ओर मुँह किये कोट उतार रहे थे। तरुणा के पाँव की आहट सुनकर वह मुड़े और उसे देखकर बोले—"ओह ! तरुण।"

तरुणा ने पानी का गिलास उनकी ओर बढ़ाया और पूछा—"भाभी नहीं आई क्या ?"

"नहीं ! वह सोमवार को लौटेगी।"

"क्या हुआ था ?" उसने मृत्यु का कारण पूछा।

'कुछ विशेष कारण न था। थोड़े दिन हुए बच्चा हुआ था और फिर स्वयं चल बसीं।"

बच्चे का शब्द सुनते ही तरुणा काँप-सी गई और पानी का खाली गिलास लेकर लौटने लगी।

"दिन को कोई आया तो नहीं ?" डाक्टर द्वारकादास ने उसे जाते देखकर पूछा।

"नहीं। आपके लिए खाना लगा दूँ।"

"रहने दो···मुझे भूख नहीं।"

तरुणा चुपचाप बाहर चली गई और डाक्टर द्वारकादास अलमारी से एक पुस्तक निकालकर पढ़ने लगे। आज घर में जानकी न थी इसलिए कोई बोलने वाला न था और पूरे घर में मौन छाया हुआ था।

डाक्टर द्वारकादास की उपस्थिति को अनुभव करके तरुणा घबराये जा रही थी। उन्होंने खाना न खाया था और उसे उन्हें दोबारा कहने का साहस न हुआ···कहीं वह कोई ऐसी बात न छेड़ दें। उसने स्वयं भी खाने से इन्कार कर दिया और अपने कमरे में लेटी रही। यही चिन्ता उसे खाये जा रही थी कि यह दो तीन दिन वह क्यों कर काटेगी।

रात को जब नगीना डाक्टर द्वारकादास के कमरे में गई तो उन्होंने उससे पूछा, "तरुण क्या सो गई।"

"नहीं, अपने कमरे में बैठी पढ़ रही हैं।" नगीना ने उत्तर दिया।

"तो क्या अभी उसने खाना नहीं खाया ? डाक्टर भैया ने पुस्तक पर से आँख उठाते हुए पूछा।"

"वहू ने भी खाना नहीं खाया।"

"क्यों ? खाना नहीं क्या।"

"खाना तो बना रखा है किन्तु आपने इन्कार कर दिया तो उन्होंने भी नहीं खाया।"

डाक्टर द्वारकादास पुस्तक बन्द करके सोचते रहे और फिर बोले—"जाओ तरुणा से कहो खाना लगाए।"

"तो आप···"

"हाँ मेरे लिये—"

थोड़ी देर बाद वह खाने की मेज पर थे और तरुणा सहमी हुई नगीना की सहायता से खाना लगा रही थी। वह आश्चर्य में थी कि पहले स्वयं ही इन्कार किया और फिर खाने को तैयार हो गये। इसमें क्या भेद है ?

उन्होंने खाना आरम्भ किया और तरुणा को चुपचाप खड़े देख कर बोले—"तुम न खाओगी क्या ?"

"मैं खा चुकी।" तरुणा ने धीरे स्वर में उत्तर दिया। नगीना ने प्रश्न सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा और आँखों ही आँखों में उसका संकेत समझकर चुप हो रही।

डाक्टर द्वारकादास ने दोनों को दृष्टि बदलते हुए देख लिया और जब नगीना रसोई घर की ओर गई तो तरुणा की ओर देखते हुए बोले :—

"तरुणा ! नारी के मुंह से झूठ अच्छा नहीं लगता।"

डाक्टर भैया के मुंह से यह बात सुनकर वह कांप गई। उसके फूल से गुलाबी होंठ थरथराने लगे। वह कोई उत्तर न दे पाई।

"मेरा मन कहता है तुमने खाना नहीं खाया और झूठ कह दिया है।" उन्होंने उसे मौन देखकर फिर कहा।

"जी नहीं, वास्तव में मुझे भूख नहीं थी।" तरुणा ने खिसियानी होकर उत्तर दिया।

"मुझे भी भूख न थी पर सोचा खा ही लूं।" और फिर कुछ देर ठहरकर बोले, "जानती हो क्यों ? इसलिए कि कहीं मेरे कारण तुम भी भूखी न सो जाओ।"

तरुणा की एकाग्रता फिर छिन्न-भिन्न हो गई। वह जितनी शान्त रहने का प्रयत्न करती, कोई न कोई घटना उतनी ही अधिक उसके मन को बेचैन कर देती। वह डरती, कहीं डाक्टर भैया उसके जीवन संबंधी पूछ-ताछ प्रारम्भ न कर दे।

उनकी तीक्ष्ण बातों से बचने के लिए उसने अपने लिए कुर्सी खींची और खाना डालने लगी। उसका ध्यान डाक्टर भैया की ओर ही था।

"तरुण !" कुछ क्षण चप रहने के बाद डाक्टर द्वारकादास ने उसे सम्बोधन किया।

"जी !" दृष्टि झुकाये उसने दबे होंठों उत्तर दिया।

"एक बात पूछूं ?"

वह आँखें उठा अवाक् उनकी ओर देखने लगी मानो यह प्रश्न करके भैया ने उसके सिर पर अचानक हथौड़ा मार दिया हो।

"तुम हर समय सहमी हुई और खोई-खोई क्यों रहती हो ?" उसे कोई उत्तर देते न देखकर डाक्टर द्वारकादास ने बात पूरी कर दी। उनके स्वर में कठोरता नहीं बल्कि नम्रता थी।

"सच कहूँ !"

"हूं।"

"आप से डर लगता है।" उसने होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट उत्पन्न करते हुए कहा और खाना खाने लगी। न जाने उसके मुंह से यह बात कैसे निकल गई। भय उसके मन को ज्यों का त्यों जकड़े हुए था।

डाक्टर द्वारकादास उसकी बात सुन कर क्षण भर कुछ सोचते रहे और फिर उसकी ओर देखते हुए बोले—"नहीं तरुण ! किसी व्यक्ति से डरना तो मेरी समझ में नहीं आता, हाँ प्रायः अपना अन्तःकरण ही मानव को डराता है।"

भैया ने आखिरी शब्दों के पर्दे में नश्तर चुभो ही दिया। उसका रंग सहसा फीका पड़ गया और गले में अटके ग्रास को पानी के घूँट से शीघ्र निगलने लगी।

खाना खाते ही वह अपने कमरे में लौट आई। वह उन्हें और कुरेदने का अवसर न देना चाहती थी। उनका गम्भीर मुख बता रहा था कि वह उससे बहुत कुछ पूछना चाहते हैं।

सोने से पहले जब नगीना उसके कमरे में पानी का गिलास रखने आई तो उसने उसे अपने कमरे में सोने को कहा।

"क्यों ? बहूजी।" नगीना ने आश्चर्य से पूछा।

"अकेली जो हूँ।"

"पहले भी तो आप अकेली थीं ?"

"मैं तुमसे विवाद नहीं कर रही···काम से निबटने पर यहीं चली आना।" मुख पर क्रोध प्रगट करते हुए तरुणा ने कहा और लेटी-लेटी पुस्तक के पन्ने पलटने लगी। भैया के शब्द निरन्तर उसके कानों में गूंज रहे थे···मानव का अन्तर ही उसे डराता है।"

दूसरे दिन डाक्टर द्वारकादास किसी काम से शाम को ही घर लौट आये। तरुणा घर में न थी। नगीना से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह दोपहर खाने के बाद ही किसी से मिलने चली गई थीं और शाम तक वापस लौटने को कह गई थीं। डाक्टर द्वारका-

दास के मन में एक शंका सी उठी और वह बिना नगीना से कुछ कहे उल्टे पांव वापस लौट गये।

वहाँ से वह सीधे गाड़ी में बैठकर चौक में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ एक दिन नगीना से उनकी भेंट हुई थी। उन्हें विश्वास था कि वह वहीं आकर रिक्शा करेगी।

गाड़ी को एक ओर रोक कर वह चौक से हटकर खड़े हो गये और आस-पास गली-मुहल्लों से निकलते हुए हर व्यक्ति को देखने लगे। वह बार-बार हाथ पर बँधी घड़ी की सुइयों को देखते और फिर इधर-उधर देखने लगते। वह सोच रहे थे कि वह कहाँ आती है ? किसके पास आती है और क्यों आती है ?

इन्हीं विचारों में वह घड़ी की ओर देख रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि कुछ दूर एक रिक्शा वाले पर पड़ी। तरुणा उससे कुछ बात कर रही थी। उनके देखते-देखते ही वह रिक्शा में बैठ गई और रिक्शा चल पड़ी। डाक्टर द्वारकादास के मन में एक साथ सैकड़ों शँकायें उठीं···भाँति-भाँति के विचार उनके मन की शान्ति को भंग करने लगे।

उस रात वह डिस्पैंसरी से देर में लौटे। नगीना खाने के लिए उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। तरुणा के कमरे का प्रकाश बता रहा था कि वह अभी तक सोई न थी। अनजाने ही घर का वातावरण गम्भीर दिखाई दे रहा था। डाक्टर द्वारकादास ने किसी से कुछ न कहा और सीधे अपने कमरे में चले गये। मन अस्वस्थ होने के कारण उन्होंने नगीना से खाना खाने को इन्कार कर दिया।

उनका मन आज अति व्यग्र था। उन्होंने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए और चुपचाप बिस्तर पर लेट गये। तरुणा के चरित्र के सम्बन्ध में उनका सन्देह बढ़ता ही जाता था···क्या यह ठीक है ?

किवाड़ पर खटखटाहट हुई। उन्होंने उठकर द्वार खोला और सामने तरुणा को खड़े देखकर चकित रह गये। उसके हाथ में दूध

का गिलास था जिसे लिए वह भीतर आई और मेज पर रखते बोली—

"नगीना कह रही थी आप कुछ अस्वस्थ हैं।"

"यह क्या है ?"

"दूध···खाना जो नहीं खाया।"

"किन्तु; इसके लिए किसने कहा था ?"

"भाभी ने···वह कहती थीं जब आप खाना नहीं खाते तो दूध पिया करते हैं···।"

डाक्टर द्वारकादास ने कोई उत्तर न दिया। तरुणा गिलास वहीं छोड़कर वापस जाने को मुड़ी। उन्होंने कनखियों से उसे जाते देखा और बोले —

"आज कोई आया था क्या ?"

तरुणा एकाएक वहीं रुक गई और मुड़ते हुए बोली, "नहीं।"

"किन्तु तुम यह कैसे कह सकती हो ? तुम तो स्वयं घर में नहीं थीं।" डाक्टर द्वारकादास ने स्वर में कुछ कठोरता लाते हुए कहा।

तरुणा यह सुनकर सन्न-सी रह गई। उसका मुख श्वेत पड़ गया और घबराये हुए स्वर में उसने उत्तर दिया—

"नगीना कह रही थी आप आये थे···मैं उस समय किसी के यहाँ गई हुई थी।"

"कहाँ ?"

"अपनी एक सखी के यहाँ···वह बीमार थी।"

"कई बार कहा यह कानपुर है, यहाँ अकेले निकलना उचित नहीं।"

"दिन का समय था इसीलिए नगीना को साथ न ले गई।"

"क्या नाम है तुम्हारी सखी का ?" पहली बार तरुणा के सामने वह कड़क कर बोले।

"जी···वह···कमला।"

"कहाँ रहती है ?'

"सिविल लाईन्ज में।"

"किन्तु तुम तो चौक बाजार की ओर गई हुई थीं।" चौक बाजार का नाम सुनते ही तरुणा झेंप गई मानो उस पर घड़ों पानी डाल दिया गया हो। वह चुपचाप आँखें नीची किये खड़ी रही। बच निकलने का कोई उपाय न था। डाक्टर द्वारकादास ने तीखी दृष्टि से उसे देखते हुए कहा।"

"तरुण ! मैंने कहा था झूठ नारी की जबान पर शोभा नहीं देता।"

डाक्टर द्वारकादास ने देखा तरुणा का अंग-अंग काँप रहा है। क्षण भर ठहर कर बिना उसका उत्तर सुने उन्होंने बात चालू रखी—"क्या यह सच नहीं जो लड़की रोजी के नाम से मेरे पास आई थी वह वास्तव में तरुणा ही थी ?"

तरुणा सटपटा गई। उसका शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। उसे स्वयं पर अधिकार न रहा और वह कम्पित स्वर में चिल्लाई—"आप इसीलिए मेरे अतीत को कुरेद रहे हैं···तो सुनिये। मैं ही वह लड़की हूँ···वही अपराधिन हूँ जिसे एक रात आपने अपनी डिस्पेन्सरी से बाहर निकाल दिया था।"

"और तुमने इसी का बदला लेने की ठान ली···और मेरे घर में आग लगाने चली आईं।"

"नहीं-नहीं···ऐसा मत कहिये···मैं तो यह जानती भी न थी कि वह आपके भाई हैं···वरना···वरना···"

"वरना···तुम कभी यहाँ न आतीं···" डाक्टर द्वारकादास ने स्वयं उसकी बात पूरी करते हुए कहा, किन्तु; तुम नहीं जानतीं कि जिस दिन से तुम यहाँ आई हो मेरी शान्ति भंग हो गई है···मेरे मनोमस्तिष्क में एक कोलाहल-सा मच गया है···मेरी रातों की नींद

उड़ गई है···मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जिसका तुमने यह बदला लिया।"

तरुणा चुपचाप खड़ी सब सुनती रही। उसकी आँखें सावन की झड़ी के समान बरस रही थीं। डाक्टर द्वारकादास अपने मन का क्रोध निकालते रहे और वह रोती रही। वह स्वयं क्रोध में आकर कोई ऐसी बात मुँह से न निकालना चाहती थी जिसके लिए उसे बाद में पछताना पड़े। पहले उसने सोचा कि अपने प्यार और बच्चे का रहस्य उन पर प्रकट कर दे किन्तु; फिर इस विचार से कि 'वह' भी अपने भैया की दृष्टि से गिर न जायें, वह चुप रही···वह तो इस ज्वाला में जल ही रही थी, निर्मल को भी क्यों जलाये···किस कठिनाई से तो उसे जीवन का सहारा प्राप्त हुआ था···क्या उसे स्वयं ही फिर खो देना उचित है···।

डाक्टर द्वारकादास अपने मन का गुबार निकालकर चुप हो गये। थोड़ी देर तक मौन छाया रहा और फिर तरुणा ने आँचल से अपने आँसू पोंछते हुए कहा—

"डाक्टर भैया ! याद है जिस दिन मेरी पहले आपसे भेंट हुई थी तो आपने कहा था मैं जीवन से प्यार करता हूँ।"

डाक्टर द्वारकादास साश्चर्य उसके मुख की ओर देखने लगे। तरुणा के मुख पर एक विशेष शान्ति झलक रही थी। क्षण-भर रुककर उसने बड़े विनम्र स्वर में बात चालू रखी, 'क्या आप मेरे जीवन से प्यार नहीं कर सकते ?"

डाक्टर द्वारकादास मौन खड़े उसकी ओर देखे जा रहे थे। तरुणा अब उनके और समीप आ गई। उन्हें क्षण भर के लिए यूँ अनुभव हुआ जैसे कोई रोगी जीवन के लिए उनसे प्रार्थना कर रहा था। तरुणा ने फिर कहा—

"आप डाक्टर हैं···भयानक से भयानक दृश्य देखकर आप नहीं काँपते···आप बड़े से बड़े घाव पर मरहम लगाकर उसे ठीक कर

देते हैं·· क्या आप मेरे घावों को ठीक न कर सकेंगे ?"

यह कहते समय उसकी आँखों में फिर से आँसू झिलमिला उठे। डाक्टर द्वारकादास गहरे सोच में पड़ गये और फिर खिड़की का पर्दा हटाकर बाहर अंधेरे में झांकते हुए भारी आवाज में बोले—

"एक वचन पर···"

"वचन ?" भर्राए हुए स्वर में उसने वह शब्द दोहराया।

"तुम कहाँ जाती हो···क्यों जाती हो···इससे मुझे मतलब नहीं किन्तु आज के बाद यदि तुम अकेली इस घर से बाहर पाँव रखोगी तो मैं तुम्हें अपने परिवार की दुश्मन समझूंगा।"

तरुणा यह सुनकर क्षण-भर के लिए अधीर हो उठी किन्तु फिर भावना पर अधिकार पाते हुए उसने उनकी बात स्वीकार कर ली और वचन देकर अपने कमरे को लौटने लगी। अभी उसने दलीज में पाँव रखे ही थे कि भैया की आवाज ने फिर उसे रोक लिया। उसमें इतना साहस न था कि मुड़कर उनकी ओर देखे। वह उससे कह रहे थे—

"तुम इस घर से बाहर न जाओगी···यह तुम्हारा मुझ पर उपकार न होगा बल्कि उस पाप का प्रायश्चित होगा जो तुमने समाज के विरुद्ध किया है।"

तरुणा तड़प गई किन्तु चुप रही। उसने जाने के लिए पाँव उठाया कि डाक्टर द्वारकादास फिर बोले—

"एक बात और—"

वह उसके पीछे आ खड़े हुए थे। तरुणा ने गर्दन लटका कर नीची दृष्टि से उनकी ओर देखा।

"मैं यह चाहता हूँ कि यह रहस्य कोई न जान पाये कि तुमने किसी शिशु के प्राण लिए हैं।"

तरुणा में और कुछ सुनने की सहन-शक्ति न थी। वह बिना उत्तर दिये अपने कमरे की ओर भागी और भीतर से किवाड़ बन्द

करके बेसुध अपने बिस्तर पर जा पड़ी।

दो दिन बाद जानकी लौट आई। उसके आने से तरुणा को कुछ सहारा मिला। घर के वातावरण में परिवर्तन आ गया। उसने सोचा मन को इन विचारों से दूर रखने का उपाय स्वयं को घर के काम काज में व्यस्त कर देना है। जानकी मेंहदी लगे हाथों से घर का काम कराने के लिए सहमत न हुई किन्तु उसके मना करने पर भी तरुणा उसका हाथ बटाती रहती। जितना भैया को देख कर वह घबराती थी उतना भाभी की निकटता से उसे सुख प्राप्त होता था।

तरुणा ने कोई पाप न किया था और फिर भी वह डाक्टर द्वारकादास पर यह स्पष्ट करने के लिए विवश थी कि वास्तव में उसने एक महापाप किया है और अब उस पाप का प्रायश्चित कर रही है। उसे विश्वास था कि एक दिन सच्चाई और उसकी साधना अवश्य ही उनका मन बदल देगी।

घर के बाहर न जाने के वचन ने उसके पाँव बांध दिये थे। मन पर पत्थर रखकर उसने अपने बच्चे से न मिलना स्वीकार कर लिया था। पड़ोस से टेलीफ़ून द्वारा वह उसकी कुशलता पूछ लेती··· और उपाय ही क्या था।

जानकी को अचानक बुखार आ गया और वह चारपाई पर लेटने को विवश हो गई। तरुणा को अवसर मिल गया कि वह घर का भार स्वयं संभाले। दो ही दिन में उसने घर का पुराना ढंग बदल दिया। हर वस्तु में नवीनता भर दी। फूलदानों में नये ढंग से फूल सजाए। खिड़कियों और द्वारों में नये पर्दे लगा दिए और फर्नीचर को ऐसे लगा कर रखा कि आँखों को भला लगे। खाना भी पहले से स्वादिष्ट पकने लगा।

डाक्टर द्वारकादास जब भी घर में लौटते कोई नया परिवर्तन

पाते। वह जानते थे कि यह तरुणा का हाथ है। जानकी जब उसकी

प्रशंसा करती तो वह चौंक जाते जैसे उन्हें विश्वास न आ रहा हो। तरुणा ने निश्चय कर लिया था कि वह अपने व्यवहार द्वारा उनके विचार बदल देगी।

आज वह डिस्पैंसरी से लौटे तो जानकी को देखकर आश्चर्य प्रगट करने लगे। वह नयी सुन्दर साड़ी पहने आराम कुर्सी पर बैठी स्वेटर बुन रही थी। उसके केशों में गुलाब के फूल टंके हुए बड़े भले लग रहे थे। उन्हें सामने देखकर सहसा वह झेंप गई और कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गई। डाक्टर द्वारकादास मुस्कराते हुए आगे बढ़े और बोले—

"यह क्या ···आज दुल्हिन बनी बैठी हो।"

"तरुणा से पूछो जिसने घर के साथ-साथ मेरा भी रंग-ढंग बदल दिया है···देखिये स्वयं धोती पहने भगवान को भोग लगा रही है और मुझे यह साड़ी पहना कर यहाँ बिठा दिया है···आपकी प्रतीक्षा करने के लिए।"

दोनों की दृष्टि एक साथ वहाँ गई जहाँ तरुणा भगवान की पूजा कर रही थी। आरती की थाली हाथ में लिए तरुणा भाभी के कमरे की ओर आई और दोनों को इकट्ठा देखकर झेंप गई। उसने काँपते हाथों से प्रसाद उठाया और भैया की ओर बढ़ाया। उनके होंठों पर हल्की सी मुस्कान उत्पन्न हुई और फुलझड़ी के समान फैल गई।

उन्हें प्रसाद देकर वह अपने कमरे की ओर जाने के लिए मुड़ी ही थी कि जानकी ने कहा, "देखा मेरी तरुण को···मेरी बहू लाखों में एक है···भगवान इसे सदा खुश रखे और शीघ्र इसकी गोद भरे।"

जानकी के अन्तिम शब्द सुनकर तरुणा एकाएक काँप गई और प्रसाद की थाली उसके हाथों से छूटकर फर्श पर आ गिरी। डाक्टर द्वारकादास इन शब्दों के रहस्य को भाँप गये। जानकी लपक कर बिखरे हुए प्रसाद को थाली में उठाने लगी और तरुणा की ओर

देखते हुए बोली—

"क्या हुआ ?"

"भाभी ! तुमने बात जो ऐसी कह दी ।"

"पगली···यह भी कोई लजाने की बात है···तुम्हारी भाभी की गोद हरी नहीं हुई···तो क्या तुम भी मेरी आशा पूरी न करोगी··· मैं तो उस दिन को तरस रही हूँ जब जब···।"

तरुणा ने हथेली से जानकी का मुँह बन्द कर दिया और भैया की ओर संकेत किया जो खड़े उनकी बातें सुन रहे थे। दोनों को एकाएक चुप होते देखकर वह अपने कमरे में चले गये। तरुणा और जानकी की एक साथ हंसी छूट गई। डाक्टर द्वारकादास को यह हँसी अच्छी न लगी। उन्हें यूं अनुभव हुआ जैसे दोनों मिलकर उनकी हँसी उड़ा रही हों।

थोड़ी देर के बाद वह कपड़े बदलकर खाने की मेज पर आ बैठे और कनखियों से रसोईघर की ओर देखने लगे जहाँ तरुणा और जानकी खाने का प्रबन्ध कर रही थी। उनके कानों में एकाएक जानकी के यह शब्द गूंजे।"

"तरुणा ! मान लो तुम्हारे दो लड़के हुए तो एक को मैं गोद ले लूंगी।"

'नहीं भाभी ! मैं यह भूल न करूंगी।"

"क्यों ?"

"पहले तुम्हारी बारी है···बड़ी जो हो।"

"अरी दस बरस तो हो गये बारी न आई···अब क्या आयेगी।"

"नहीं भाभी ! ऐसा न कहो···भैया तो डाक्टर हैं···।"

"अरी डाक्टर हैं तो दुनिया के लिए···अपने लिए नहीं" जानकी ने व्यंग्य भरे स्वर में कहा और तरुणा जोर से हँस दी।

डाक्टर द्वारकादास ने चुपचाप उनकी बातें सुनीं और हँसी भी किन्तु, उनके मन के ज्वार-भाटे को कोई न देख सका।

छः

"भाभी ! एक बात कह दूँ ।" रसोई घर में बैठी जानकी का हाथ बटाते हुए सहसा तरुणा ने कहा ।

"रोका किसने है !" जानकी ने सब्जी काटते हुए उत्तर दिया ।

"डरती हूँ कहीं बुरा न मान जाओ···छोटा मुँह बड़ी बात—" तरुणा ने पास होते हुए कहा ।

"कहेगी भी कि बस बातें बनाये जायेगी ।"

"तुम किसी को गोद क्यों नहीं ले लेतीं ?"

"क्या ?" जानकी चौंक गई और फिर सम्भलते बोली, "ले जो रखा है···तुम्हारे निर्मल को···"

"वह तो अब बड़े हो गये···कोई नन्हा-सा जिसे तुम अपना कह सको ।" तरुणा ने धीरे-से कहा ।

"वह क्या पराया है ?" नथुने फुलाते हुए जानकी ने तरुणा की ओर देखा और हाथ धोने के लिए नल की ओर बढ़ी । तरुणा भी चुपचाप उसके पीछे हो ली । जानकी ने गर्दन मोड़कर बात चालू रखी । जब मैं ब्याही आई थी तब वह बच्चा ही था ।"

"मुझे कब इन्कार है···तुम तो बिगड़ने लगीं भाभी । मेरा अभिप्राय था···।"

"क्या अभिप्राय था ?" वह आवाज में तेजी लाते हुए बोलीं ।

"कोई अपना होना ही चाहिए···मेरी मानो किसी को सदा के लिए गोद ले लो ।"

जानकी चुप रही और दूसरी ओर मुँह फेरकर खड़ी हो गई ।

तरुणा उसे अपनी ओर घुमाते हुए बोली—

"भाभी···!"

जानकी के मुख पर क्रोध न था, उसकी आँखों में आँसू थे जिन्हें वह छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। भाभी की भावनायें उमड़ आई थीं। तरुणा को दुख हुआ कि उसने व्यर्थ उनका मन दुखाया। वह बोली—

"भाभी ! क्षमा करना···जाने मैं क्या बकने लगी।"

"नहीं तरुण ? तूने मेरे मन की बात ही कही है···सच पूछो तो सन्तान के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता···यूं दिन भर काम में लगी रहती हूँ, हँसती भी हूँ किन्तु इस विचार को मन से हटा नहीं सकती। बस एक थके हुए यात्री के समान बढ़ती जाती हूँ···जीवन में एक अभाव है जो पूरा होने में नहीं आता।"

"तो क्या विचार है ?"

"एक दिन उनसे कह डालूंगी।"

"क्या ?"

"किसी को गोद ले लें।"

"कोई ध्यान में है क्या ?"

"हाँ···इनकी मुरादनगर वाली बहन का लड़का···कोई एक बरस का होगा।"

"वह दे देगी क्या ?"

"उन्होंने ही तो कहा है···और फिर उन्हें क्या अभाव है··· उनके पहले ही चार लड़के और तीन लड़कियाँ हैं।"

"इतने बच्चे ?" तरुणा ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ तरुण ! भगवान् का खेल है···कोई एक को तरस रहा है और यह बेचारी दिन-रात बच्चों के कारण चिन्ता में है···जब से ब्याही गई है चैन नहीं···"

भाभी की बात पर वह हँस पड़ी और फिर गम्भीर होकर

बोली, "किन्तु मैं इसके पक्ष में नहीं।"

"क्यों? अपना लहू फिर अपना है।"

"किन्तु अपना होता नहीं···जब भी बड़ा हुआ और वास्तविकता जान गया फिर न जाने कब आँखें बदल ले।"

"यह तो तूने सत्य कहा", जानकी बोली, "मेरी चाची ने भी अपना भतीजा गोद लिया था। जब वह बड़ा हुआ तो फिर अपने माता-पिता का हो गया इसलिए कि वह अमीर थे।"

"तो भाभी! एक बात कहूँ!"

"क्या?"

"किसी आश्रम में से ले लो।"

"न—वह कभी न मानेंगे···न जाने किस-किस जात और कैसे-कैसे खानदान के होते हैं।"

जानकी की बात सुनकर तरुणा के मुख पर निराशा छा गई। कुछ क्षण चुप रहकर वह बोली—

"यह तो कहने की बातें हैं···वरन् पालन-पोषण और वातावरण मानव के आचरण को बनाता है।"

"किन्तु तुम्हारे भैया ऐसा न करेंगे।"

"यदि तुम चाहो तो वह इन्कार भी न करेंगे।"

"क्या कहूँ?"

"यहाँ एक आश्रम है। मेरी एक सखी उसकी वार्डन है···कहो तो उससे भेंट करवा दूँ।"

"वह जान गए तो।"

"कभी बाजार जाने के बहाने चली चलेंगी और वहीं से···"

"कब?" जानकी को कुछ उत्सुकता हुई।

"कल दोपहर ही सही।"

बात निश्चित हो गई और जानकी अपने काम में व्यस्त हो गई। तरुणा गोल कमरे को सजाने लगी। वह प्रसन्न भी थी किन्तु इस

प्रसन्नता के साथ एक भय भी लिपटा हुआ था जो उसके मन को खुलने न देता था। एक असमंजस उसके मस्तिष्क को घेरे हुए था··· वह सोचने लगी···यदि भाभी उसके सूरज को गोद में ले लें तो उसके जीवन की विकट समस्या सुलझ जाए···वह उसके पास रह सकेगा··· वह जी भर के उसे प्यार कर सकेगी···किन्तु···किन्तु असम्भव कैसे सम्भव हो सकता है···इच्छायें इतनी सरलता से तो पूरी नहीं हो जाती···यही विचार उसकी प्रसन्नता को चिन्ता में परिवर्तित कर रहे थे···प्रकाश की नन्हीं सी किरण फिर अन्धकार में खो गई।

दूसरे दिन खाने के पश्चात् दोनों नगीना को घर छोड़कर चौक बाजार की ओर चल पड़ीं। आश्रम की ओर जाते हुए तरुणा को एक घबराहट-सी हो रही थी किन्तु वह भाभी पर यह स्पष्ट न होने देती और जब भी दोनों की दृष्टि मिलती तो वह होठों पर एक बनावटी मुस्कराहट उत्पन्न कर लेती। जानकी का मन भी कांप रहा था ! तरुणा की मनोदशा उससे छिपी न रह सकी और धीरे [illegible] बोली—

"यह आज तू कांप क्यों रही है ?"

"नहीं तो···यूँही···ऐसी तो कोई बात नहीं भाभी···। मुझे तो यूँ लग रहा है जैसे तुम घबरा-सी रही हो।"

"हां तरुण ! सोचती हूँ तुम्हारे भैया को पता चल गया तो क्या कहेंगे···मैं आज जीवन में पहली बार उनसे चोरी-छिपे कहीं जा रहीं हूँ।"

तरुणा के मन में भैया के नाम से एक कम्पन-सी दौड़ गई किन्तु इसे छिपाते हुए बोली—

"ऐसा भी क्या भाभी ! स्त्री सदा के लिए पुरुष की दासी बनकर स्वयं उसको घमण्डी बना देती है। यहाँ तक कि वह स्वयं अपनी इच्छानुसार कुछ करने योग्य नहीं रहती।"

"यही तो हमारी दुर्बलता है···इतना भी तो साहस नहीं कि

उनसे ऐसी बात कह सकूँ···सोचती हूँ यह गोद लेने की बात भी तुम्हीं से या निर्मल से कहलवाऊँ।"

"मुझसे ?" तरुणा ने घबराकर कहा और फिर बोली, "नहीं भाभी ! मुझसे यह न होगा।"

"क्यों भैया से डर लगता है क्या ?"

तरुणा ने सिर हिला दिया। जानकी की हँसी छूट गई। थोड़ी देर पहल तो वह उसे पुरुष के स्वामीपन के विरुद्ध उकसा रही थी और अब स्वयं डर रही थी।

कुछ देर दोनों मौन रहीं और फिर तरुणा ने प्रार्थनापूर्वक कहा, "भाभी ! भैया को यह ज्ञात न हो कि मैं तुम्हें आश्रम में ले गई थी।"

"घबरा क्यों रही हो···नहीं कहूँगी।"

"क्या कहोगी ?"

"आश्रम तो देख लेने दो···न जाने कहने की आवश्यकता भी पड़े या न।"

आश्रम में पहुँचकर जानकी घबराहट से पसीना-पसीना हुई जा रही थी किन्तु तरुणा का भय दूर हो गया था। उसके मन में फिर से आशा की किरण लौट आई। भाभी को आश्रम के दफ्तर में बैठाकर वह दीदी से मिलने के लिए भीतर आई। बच्चे को मिलने की उत्सुकता से उसके पांव धरती पर न लग रहे थे।

दीदी भीतर किसी और कमरे में थी। तरुणा ने उसे एक ओर ले जाकर सारी बात उसके कानों में डाल दी और उससे वचन ले लिया कि वह इस रहस्य को प्रगट न करते हुए उसकी सहायता करेगी। सूरज को अपने निकट रखने का यही एक उपाय उसके पास था···नहीं तो यदि उसे कानपुर से वाहर जाना पड़ा तो वह अपने लाल को देखने के लिए भी तरसती रहेगी।

दीदी जानकी से बड़ी उदारता से मिलीं और उसके समाज-सेवा के भाव की सराहना करते हुए उसे हाल में ले जाकर बारी-बारी सब

बच्चे दिखाने लगीं। धीरे-धीरे वह वहाँ पहुँचे जहाँ सूरज झूले में बैठा खिलौनों से खेल रहा था। रंग-रूप और स्वास्थ्य में वह शेष बच्चों में सबसे उत्तम था…गोरे, भोले-भाले मुख पर एक विशेष मोहिनी थी जिससे आकर्षित हुए बिना जानकी न रह सकी। वह ध्यान-पूर्वक खड़ी इस बालक को देखने लगी जो इन्हें आता देखकर खिलौनों को छोड़कर भोलेपन से इन सब को देख रहा था। तरुणा ने बच्चे को गोद में उठा लिया और उसका मुँह चूमते हुए बोली—

"कितना प्यारा बच्चा है भाभी !" यह कहते हुए उसने बच्चे को भाभी की ओर बढ़ाया, किन्तु, यह देखकर झेंप गई कि वह बच्चे की ओर नहीं बल्कि उसकी ओर देख रही थी। मन में चोर था ही, जानकी की एकाग्र दृष्टि देखकर वह गम्भीर हो गई और बोली, "क्या सोच रही हो ?"

"देख रही हूँ तुम्हें बच्चों से कितना लगाव है।" जानकी ने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया और उसे प्यार करते हुए दीदी से पूछा—

"क्या नाम है ?"

"सूरज।"

"बड़ा प्यारा नाम है।"

"बच्चा भी तो प्यारा है।" दीदी ने तरुणा की ओर देखते हुए कहा।

"किसी अच्छे घराने का प्रतीत होता है…कितने वर्ष का है ?"

"लगभग दो वर्ष का।"

"किस परिवार का है ?"

जानकी के इस प्रश्न से तरुणा क्षण-भर के लिए काँप गई किन्तु शीघ्र सम्भल कर दीदी की ओर देखने लगी जो हर प्रश्न का उचित उत्तर दे रही थी।

"यह कौन है और यहाँ कैसे आया…यह बताना हमारे आश्रम

के नियमों के विरुद्ध है किन्तु एक शुभचिंतक होते हुए इतना कह सकती हूँ कि यह किसी साधारण घराने से सम्बन्ध नहीं रखता। इसकी धमनियों में किसी उच्च कुल का रक्त है···बहन ! तुम तो समझती ही हो जीवन मार्ग पर प्रायः कुछ ऐसे भी दीपक होते हैं जिन्हें प्रकाशमान करने वाला व्यक्ति स्वयं अंधेरे में ही रहना चाहता है—बस समझ लो यह भी एक ऐसा दीपक है··"

जानकी ने तरुणा को देखा। उसकी पलकें भीग चुकी थीं; किंतु होंठों पर बलपूर्वक लाई गई मुस्कान झलक रही थी। जानकी भी मुस्कराने लगी और बोली—

"तरुण ! क्या विचार है ? अपने अंधेरे घर में यह दीपक ले चलूं।"

"जैसे तुम उचित समझो···मुझें तो इन सब बच्चों में यही प्यारा लगता है···हाँ कुछ नटझट है।"

"यह बात तो मुझे इसकी बड़ी अच्छी लगी है—तुम्हारे भैया को भी नटखट बच्चों से प्यार है···कहते हैं छोटा होते हुए निर्मल भी वड़ा नटखट था।"

तरुणा को लाज-सी आ गई और क्षण-भर के लिए उसका मन गद्-गद् हो उठा। अपनी इस असाधारण सफलता पर वह प्रसन्न हो रही थी किन्तु सहसा इस विचार ने, कि जाने डाक्टर भैया मानें या न मानें, उसे फिर मलीन कर दिया और वह जानकी की ओर देखने लगी जो दीदी से बच्चा प्राप्त करने का ढंग पूछ रही थी।

"बच्चे का लेना कानून द्वारा लिखित होगा और आश्रम को पांच सौ रुपया चन्दा देना होगा।" दीदी ने उत्तर दिया और बच्चे को जानकी की बाँहों से लेकर एक आया की गोद में दे दिया तरुणा और जानकी दोनों स्नेहपूर्वक उसके भोले-भाले मुखड़े को देखने लगीं।

घर लौटने पर उन्हें यह जानकर सान्त्वना हुई कि डाक्टर भैया

उनकी अनुपस्थिति में घर नहीं आये। अब समस्या थी कि उनसे बात क्योंकर आरम्भ की जाये। दोनों मन ही मन इसके उपाय सोचने लगीं।

'भाभी ! भैया मान गये तो घर में रौनक आ जायेगी !" तरुणा ने कहा।

"किन्तु प्रश्न तो यह है कि उनसे किस प्रकार कहा जाये ?"

"तुम्हें थोड़ा साहस से काम लेना पड़ेगा, कुछ तरकीब करनी पड़ेगी।"

"कैसे ?"

"यही कुछ प्यार, कुछ झगड़ा···कुछ रूठना·· मन पिघल गया तो आंसुओं की बौछार कर देना···तेवर चढ़ गये तो कंधा झटककर मुंह फेर लेना।"

"यह त्रिया-चरित्र उन पर नहीं चलते।"

"नहीं भाभी वह स्त्री ही क्या जो पुरुष को अपनी बात पर सहमत न कर सके···" तरुणा ने मुस्कराते हुए कहा और अपने कमरे में चली गई।

रात को खाना खाकर डाक्टर द्वारकादास अपने कमरे में किसी पुस्तक का अध्ययन करने लगे। जानकी बुनने का स्वेटर लेकर साथ वाली कुर्सी पर बैठ गई। वह बार-बार छिपी दृष्टि से उनकी ओर देख लेती। उसे अभी तक उनसे बात करने का अवसर न मिला था। बड़ी देर तक जब उन्होंने पुस्तक से सिर न उठाया तो जानकी ने बात आरम्भ की—

"दीदी का पत्र आया था।"

"क्या लिखा है ?" उन्होंने पुस्तक पर दृष्टि जमाते हुए ही पूछा।

"सब कुशल हैं···आपको याद करते हैं।"

"दशहरे की छुट्टियों में आने को लिखा था उन्होंने ?"

"हाँ ! किन्तु; अब न आ सकेंगी···घर-गृहस्थी में से अवकाश निकालना सहज नहीं।"

"यह बात नहीं जानकी ! ससुराल जाकर लड़कियों का आने को मन नहीं चाहता···वह तो बच्चों के जमघट में फँसी है···स्वयं ही को देख लो···कोई ऐसा जंजाल नहीं फिर भी मायके जाने का नाम नहीं लेती।"

"कहिये तो कल ही चली जाऊँ ?"

"मेरा यह अभिप्राय नहीं था···मैंने तो उदाहरण दिया था। बेचारी बच्चों को छोड़कर कहाँ आ सकती है—कई बार कहा है मुन्ने और गीता को हमारे यहाँ भेज दें—तुम्हारा भी मन लगा रहेगा और उसका जी हल्का हो जायेगा।"

"मेरा मन ही लगाना है तो एक बात कहूँ।" जानकी ने बुनना छोड़कर धीरे से कहा।

"क्या ?" डाक्टर द्वारकादास ने उत्सुकतापूर्वक पत्नी की ओर देखते हुए पूछा।

जानकी क्षण-भर मौन रहकर सोचती रही, कहूँ कि न कहूँ, और फिर एकाएक उसने मन की बात कह ही दी—

"कहिए तो किसी को गोद ले लूँ ?"

"किस को ?"

"किसी को भी।"

"दीदी के मुन्ने को ?"

"नहीं—।"

"किसी पड़ोसिन का···।"

"वह भी नहीं।"

"फिर कौन ?"

"किसी आश्रम से ले आयेंगे जो बड़ा होकर भी हमारा ही बना रह सके।"

"यह व्यर्थ के विचार कहाँ से इकट्ठे करती रहती हो ?"

"तो आपको सन्तान की इच्छा नहीं" जानकी ने कुछ निराश होकर भर्राये हुए स्वर में कहा।

"है…किन्तु, गली के कंकर-पत्थर उठाकर घर में लाने की इच्छा नहीं।" डाक्टर द्वारकादास ने असावधानी से उत्तर दिया और फिर पुस्तक पढ़ने लगे।

डाक्टर द्वारकादास के इस रूखे उत्तर से जानकी का मन बुझ गया और वह चुप हो गई। उसने चाहा तो बहुत कि पति की इस बात का कोई उचित उत्तर दे किन्तु उसके मुँह से कोई शब्द न निकल सके—होठ कुछ कहने को थरथराये पर थरथरा कर रह गये। उसने मुँह फेरा और किवाड़ को एक धमाके से बन्द कर बाहर चली गई। डाक्टर द्वारकादास ने एकाएक दृष्टि उठाकर पत्नि का क्रोध देखा और फिर पढ़ने में तल्लीन हो गये।

पुस्तक में कुछ ऐसे खोये कि उन्हें पता भी न चला कि कितनी रात बीत चुकी है। सहसा किसी घड़ी ने टन-टन ग्यारह बजाये तो उन्होंने पुस्तक बन्द कर दी और जानकी की चारपाई की ओर दृष्टि डाली। वह अभी तक लौटकर न आई थी। पहले तो उन्होंने सोचा कि जाकर उसे मना लाये किन्तु फिर मन में कुछ विचार कर चुप हो गये। जरा-जरा सी बातों पर व्यर्थ रूठना उन्हें अच्छा न लगता था। उन्होंने फिर पुस्तक को खोल लिया और पढ़ने लगे।

थोड़ी देर बाद किवाड़ पर आहट हुई। पर्दा उठा और दूध का गिलास हाथ में लिये तरुणा भीतर आई। डाक्टर द्वारकादास ने आश्चर्यपूर्वक उसकी ओर देखा और पूछा—

"जानकी कहाँ है ?"

"मेरे कमरे में हैं।"

"क्या कर रही है वहाँ ?"

"सो रही हैं।"

"न जाने इन स्त्रियों की बुद्धि इतनी उलट क्यों होती है ?"

"आप भी उनके लिए ऐसा सोचते हैं ?" तरुणा ने नम्रता से पूछा।

"और क्या···यह भी क्या कोई सोचने की बात है ?" वह अपनी चिन्ता को छिपाते हुए बोले।

"इसमें उन्होंने झूठ ही क्या कहा है ?" तरुणा ने वैसे ही धीमे स्वर में कहा।

"तुम भी उसी का पक्ष ले रही हो।"

"भैया आप तो स्वयं डाक्टर हैं और यह भली-भाँति समझते हैं कि स्त्री के लिए सन्तान का होना कितना आवश्यक है···मातृत्व उसके लिए प्राकृतिक है···।"

तरुणा के मन से ये शब्द अनजाने में निकल गए। उसने शीघ्रता में क्या कह डाला, यह सोचकर वह झेंप सी गई। डाक्टर द्वारकादास विस्मित उसकी ओर देखते रहे और फिर कठोर स्वर में किन्तु धीरे से बोले—"तुम भी तो एक स्त्री हो—फिर उस निर्दोष के प्राण क्यों लिए ?"

डाक्टर द्वारकादास ने अवसर देखकर यह बात कह दी थी। तरुणा के पाँव तले की धरती खिसक गई; वह सोच भी न सकती थी कि उस दिन की बातचीत के पश्चात् कभी भैया ऐसा विष भरा तीर छोड़ेंगे। उसका मुख श्वेत पड़ गया और शरीर का रोआँ-रोआँ काँप उठा। उसने अपने हृदय पर हाथ रखा और बड़ी तेजी से बाहर चली गई। डाक्टर द्वारकादास ने क्रोध में आकर यह बात कह डाली थी···उन्होने सोचा उन्हें यूँ न कहना चाहिए था, किन्तु तीर तो अब निकल ही चुका था। उन्होंने एक ही बार में दूध का गिलास खाली कर दिया और बत्ती बुझाकर अपने बिस्तर पर जा लेटे। साथ वाला बिस्तर खाली था। जानकी लौटकर न आई थी।

रात को अचानक डाक्टर द्वारकादास की आँख खुली तो वह

साथ वाली चारपाई पर किसी को देखकर चौंक गए। उन्होंने आँखें फाड़कर अँधेरे में देखा। वह जानकी ही थी जो अभी तक न सोई थी बल्कि लेटी सिसकियाँ भर रही थी। रात के मौन में उसके दबे-दबे रोने का स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा था। कुछ देर तो उसकी ओर मुँह फेरकर वह देखते रहे और फिर धीरे-से उसे छूते हुए बोले—
"जनक ! यह क्या हो रहा है ?"

जानकी ने झटककर अपनी बाँह छुड़ा ली और करवट लेकर और दूर हो गई। डाक्टर द्वारकादास ने फिर बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और पूरे बल से उसे अपनी ओर खींचा। जानकी इस बार बेसुध सी उनकी गोद में आ गिरी और अपना मुँह उनके वक्ष से लगाकर बच्चों के समान फूट-फूटकर रोने लगी। डाक्टर द्वारकादास का मन पिघल गया और उसके बालों को अपनी उँग-लियों से सँवारते हुए बोले।

"जनक ! पागल हो गई हो क्या ? ऐसी कौन-सी बात थी जो तुमने रो-रोकर यह दशा बना ली है ?"

उसने फिर कोई उत्तर न दिया। डाक्टर द्वारकादास ने फिर कहना आरम्भ किया—

"जनक ! इतना तो सोचो, कभी पराया भी अपना बन सका है ?"

"क्यों नहीं ?" रूँधे हुए स्वर में जानकी बोली, "जब बड़ा होकर वह स्वयं को इस घर और वातावरण में पायेगा तो क्या वह पराया हो जायेगा ?"

"अच्छा तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं दीदी को लिखे देता हूँ।"

"क्या ?"

"छोटा मुन्ना हमें दे दें।"

वह चुप रही। उसकी सिसकियाँ समाप्त हो चुकी थीं किन्तु होंठ अब भी धीरे-धीरे थरथरा रहे थे जैसे वह कुछ कहना चाहते

हों। डाक्टर द्वारकादास चुपचाप उसे देखते रहे। थोड़ी देर के मौन के बाद जानकी बोली—"एक बात कहूँ।"

"क्या ?"

"दीदी का नन्हा गोद लेने के पक्ष में मैं नहीं।"

"क्यों ?"

"बड़ा होकर वह हमारा रहे या उनके पास चला जाये, इसका कोई भरोसा नहीं···किन्तु बाहर से लिया हुआ बच्चा तो अपना ही बनकर रहेगा।"

"किन्तु अच्छे खानदान का—"

"यह तो सोचने की बात है—पालन-पोषण और वातावरण का प्रभाव अधिक होता है—बच्चे को हम अपने ढंग अनुसार ढालेंगे तो वैसा ही बन जायेगा।"

"यह कैसे सम्भव है···आश्रम के बच्चे···"

"आप ऐसा न कहिए—कल ही मैं आपको वहाँ ले चलूंगी।"

"तो क्या तुम—"

"मेरी एक सखी वहाँ की वार्डन है—किसी पर मन जमा तो ले लेंगे—वह उसके कुल परिवार से भी अनभिज्ञ न रखेगी—आप भी संतोष कर लीजिए।"

पत्नी की बात सुनकर डाक्टर द्वारकादास सोच में पड़ गए। उनकी बुद्धि में कुछ न आ रहा था कि क्या करें और किस प्रकार जानकी को समझायें। प्रकृति ने उनसे अन्याय किया था जो उन्हें सन्तान से वंचित रखा। अब वह पत्नी की इच्छाओं को, उसकी भावनाओं को दबाकर घर में हर समय का एक खिचाव उत्पन्न न करना चाहते थे—तरुणा के कारण वह पहले ही चिन्तित थे अब जानकी की बात न मानकर व्यर्थ की चख-चख बढ़ेगी ही—परन्तु अनजाने बालक को अपना लेना उचित होगा !—वह एक गहरे असमंजस में थे।

उन्हें गहरे सोच में डूबे देखकर जानकी ने पूछा।

"तो फिर कब चलिएगा—"

"कहाँ ?"

"आश्रम—"

"चले चलेंगे किसी दिन—इतनी शीघ्रता भी क्या—"

"यह आप मेरे मन से पूछें—"

"कुछ दिन ठहर जाओ—सोच लेने दो।"

"इसमें सोचने की क्या बात है।"

"कहा न चलेंगे—अगले बुधवार तक।"

जानकी गम्भीर हो गई और आँखें झुकाकर उनके हृदय की धड़कन सुनने लगी। द्वारकादास उसका मुँह अपनी ओर घुमाते बोले—

"जनक ! वचन रहा—मैं तुम्हें बना नहीं रहा—जैसे चाहोगी वैसे ही होगा।"

जानकी ने अपना मुख उनके वक्ष पर रख दिया। उसकी आँखें फिर भर आईं किन्तु, अबके आँसू दुख के नहीं बल्कि हर्ष के थे।

सात

इतवार का दिन था और दोपहर का समय, तरुणा अकेली बैठी बड़ी व्याकुलता से समय काट रही थी और समय था कि कटने में ही न आता था। वह भैया और भाभी की प्रतीक्षा कर रही थी जो आश्रम में गए हुए थे। उसके मन में सैकड़ों विचार उठते…आशायें बनतीं और बिखर जातीं। वह दोनों उसके सूरज को लेकर घर आ ही रहे होंगे। डाक्टर द्वारकादास जानकी के संग आश्रम में जाकर

सूरज को एक बार देख आए थे और उन्होंने उसे गोद स्वीकार लेना कर लिया था। आज वह दोनों उसे कानून द्वारा लाने के लिए लिखा-पढ़ी करने वाले थे।

उसके मस्तिष्क में एक विचार आता और एक जाता...वह प्रसन्न थी कि उसके अंधेरे जीवन में दीपक उजाला करने वाला उस का सूरज उसके पास आया ही चाहता है—किन्तु; कहीं वहाँ जाकर अचानक भैया का विचार बदल गया तो...बच्चे को कानून द्वारा अपनाने में कोई अड़चन आ पड़ी तो...क्या होगा ? उस विचार से उसका कल्पित सुनहरा भविष्य फिर धुंधला पड़ गया...मानो फूल पर नृत्य करती हुई तितली को किसी अज्ञात शक्ति ने क्षण-भर में मिटा डाला हो और पंख बिखर गये हों।

वह बेसुध-सी पलंग पर आ बैठी और सामने लगे दर्पण में अपना मुख देखने लगी। उसे ध्यान आया कि उसने बस उधेड़-बुन में सवेरे से वस्त्र भी न बदले थे। उसने सोचा कि झट कपड़े बदल ले किन्तु; फिर मन न चाहा...उसका मन किसी भी कार्य में न लग रहा था...वह तो भैया और भाभी को देखने के लिए व्याकुल थी... उसके कान उनके पाँव की आहट पर और आँखें बाहर द्वार पर लगी थीं।

नगीना किसी कार्यवश बाज़ार में गई हुई थी और घर में वह बिल्कुल अकेली थी। जब अपने कमरे में उसका मन न लगा तो वह अकारण ही सब कमरों में चक्कर लगाने लगी...वह चाहती थी कि किसी प्रकार यह समय शीघ्र कट जाये और उसके मन की शंका दूर हो।

इस व्याकुलता में उसने अपने कमरे की अलमारी का किवाड़ खोला और छोटी-सी मोटर निकाली जो वह मुन्ने के लिए छिपकर बाज़ार से लेती आई थी। उसका मन तो चाहता था कि वह उसके लिए खिलौनों का ढेर का ढेर ले चले किन्तु; वह डाक्टर द्वारकादास

और जानकी पर यह स्पष्ट न होने देना चाहती थी कि उसे इस बच्चे से पहले से ही प्यार है···वह अपनी ममता को वैसे भी गुप्त रखना चाहती थी क्योंकि उसका लाभ इसी में था कि बच्चे का प्यार उससे नहीं बल्कि जानकी से बढ़े।

वह अपनी कल्पना में खोई न जाने कहाँ पहुँच गई, किसी के पुकारने का शब्द सुनकर वह चौंक उठी। शायद भैया या भाभी लौट आए थे···वह उछलकर उठी और फिर एकाएक रुक गई··· मोटर आने की आवाज़ तो उसने नहीं सुनी···उसने सोचा नगीना होगी···किन्तु नहीं, नगीना ने कभी उसका नाम लेकर तो नहीं पुकारा···वह उत्सुकता से आँचल सिर पर लेकर द्वार की ओर बढ़ी और स्तब्ध होकर खड़ी देखती रह गई। सामने निर्मल खड़ा उसे पुकार रहा था। क्षण-भर तो वह खोई-खोई सी उसे देखती रही। उसके होंठों की कोरों से एक हल्की-सी मुस्कान उत्पन्न हुई और पूरे मुख पर फैल गई। उसके गालों पर सूर्य उदय की-सी लालिमा छा गई और वह उससे लिपट गई।

"आप कब आये ?" तरुणा ने कम्पित स्वर में पूछा।

"सीधा स्टेशन से आ रहा हूँ।"

"आपने आने की सूचना क्यों न दी ?"

"अचानक चले आने में जो आनन्द है वह सूचना देकर आने में कहाँ।"

तरुणा ने उसके हाथ से सूटकेस थाम लिया।

"तरुण ! यह आज क्या दशा बना रक्खी है ?" निर्मल ने सिर से पाँव तक उस पर एक दृष्टि डालते हुए पूछा।

"ओह···घर की झाड़-पोंछ में लगी थी—अभी कपड़े बदलकर आई।" यह कहकर तरुणा ने भागना चाहा किन्तु, निर्मल ने हाथ पकड़कर रोक लिया और बोला—"रहने दो···आज तो इन्हीं वस्त्रों में सुन्दर लग रही हो।"

निर्मल असावधानी से अपना कोट उतारकर एक ओर रखते हुए पलंग पर बैठ गया और पूछने लगा—

"भाभी कहाँ हैं ?"

"घर पर नहीं।"

"भैया कैसे हैं ?"

"मेरे अतिरिक्त सब अच्छे हैं।" तरुणा ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"क्यों ? तुम्हें क्या कष्ट था ?"

"यहाँ अकेले तड़पने को छोड़ गये और पूछते हैं क्या कष्ट था ?"

"तुम्हें अपने पास बुला न सका इसलिए स्वयं चला आया हूँ।"

"आप न आते तो मैं स्वयं बिना सूचना दिये चुपचाप चली आती।" तरुणा ने भोलेपन से उसके वक्ष पर सिर रखते हुए कहा। निर्मल ने उसे आलिंगन में समेट लिया और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछने लगा—"भाभी कहाँ गई हैं ?"

तरुणा को एकाएक विनोद सूझा, गम्भीर होते हुए बोली, "हस्पताल में···"

"हस्पताल में। कुशल तो है।" निर्मल ने चिन्ता प्रगट करते हुए झट पूछा।

"घबराइये नहीं···भैया भी वहीं हैं।"

"बात क्या है ?"

"आपको डाक्टर भैया ने नहीं लिखा क्या ?"

"क्या ?"

"आपके भतीजा हुआ है।" तरुणा ने मुस्कराते हुए कहा।

"सच ! तुमने मुझको क्यों नहीं लिखा ?" वह उछलकर खड़ा हो गया और प्रसन्ना-पूर्वक तरुणा की ओर देखने लगा।

"भाभी ने रोक दिया था।"

"क्यों ?"

"मैं क्या जानूँ ?" वह बनते हुए बोली ।

उसने निर्मल से यह मजाक कर तो दिया किन्तु; भीतर-ही-भीतर डर रही थी कि वास्तविकता ज्ञात होने पर वह क्या समझेगा···मैंने उनसे कितना बड़ा झूठ बोला । वह उसके मुख पर झलकती हुई प्रसन्नता को देखने लगी ।

"तो यह बात है···कौन से हस्पताल में ?" निर्मल ने भाभी को बधाई देने की इच्छा प्रकट करते हुए पूछा ।

"आप व्याकुल न हों···वह बस आते ही होंगे···भैया उन्हें लेने गये हुए हैं ।'

"मैं पहले जान लेता तो मुन्ने के लिए ढेर से खिलौने ले आता ।"

तरुणा ने कोई उत्तर न दिया और चुपचाप सामने की अलमारी में से छोटी-सी मोटर निकालकर निर्मल के हाथ में दे दी ।

"यह क्या ?"

"आप खिलौनों को कह रहे थे ना···मैं पहले ही ले आई थी ।"

"कैसा है मुन्ना ?"

"बड़ा सुन्दर···किन्तु नाक भैया जैसी नुकीली नहीं···आप जैसी पकौड़ा-सी है ।" हँसते हुए बोली ।

"हट···" निर्मल ने तरुणा को बनते हुए कठोर स्वर में कहा । इतने में बाहर बरामदे में आहट हुई और दोनों एक साथ अलग होकर खिड़की से बाहर झांकने लगे । नगीना बाजार से लौट आई थी ।

तरुणा निर्मल के स्नान आदि का प्रबन्ध करने लगी । उसने निर्मल से इतना बड़ा मजाक कर तो दिया था किन्तु अब इसके लिए पछता रही थी । वह सोचने लगी जब सूरज को लेकर घर लौटेंगे तो वह क्या कहेगा···और यदि भैया इस मजाक को सहन

न कर सके और बिगड़ बैठे तो—? हो सकता है वह सूरज को न लायें···अपना निश्चय बदल दें···इस विचार से वह क्षुब्ध हो गई।

निर्मल भी लेटे-लेटे कुछ ऐसी ही बातें सोच रहा था। उसे विश्वास न आ रहा था कि बच्चे वाली बात ठीक है···यदि ऐसा होता तो भैया उसे क्यों न लिखते···किन्तु···वह लिखते क्या··· यह भी कोई लिखने की बातें होती हैं···यह विचार आते ही वह खिलखिला कर हंस पड़ा। उसकी ध्वनि सुनकर तरुणा स्नानगृह से निकल आई और आश्चर्य से उसे देखने लगी।

"तरुण ! तुम ही बताओ···भला यह बातें भी कोई लिखने की होती हैं ?" उसने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

"क्या ?"

"यही···मान लो कल हमारे बेटा हो···तो यह बात मैं स्वयं किसी को कैसे लिख सकूंगा···" यह कहकर वह फिर अनायास हँसने लगा। तरुणा गम्भीर हो गई और बोली—

"अब छोड़िए यह हँसी-मजाक और नहा लीजिये—"

"मेरा भतीजा हुआ है···और तुम इसे हँसी मजाक कहती हो—मैं तो ठहाके लगाऊँगा···नाचूंगा, गाऊँगा···तुम मुझे रोकने वाली कौन ?" और वह बच्चों के समान कमरे के फ़र्श पर नाचने लगा। उसी समय नगीना भीतर आई और बोली—

"वह आ गये।"

निर्मल वहीं रुक गया और तरुणा की ओर देखते हुए सहर्ष चिल्लाया, "आ गये भाभी भैया आ गये।" और यह कहता हुआ बाहर भागा। तरुणा साँस रोककर किवाड़ के साथ खड़ी हो गई।

कमरे के बाहर हँसी का एक फ़व्वारा फूट पड़ा। दोनों भाई गले मिल रहे थे। तरुणा ने किवाड़ की दरार में से उन्हें मिलते देखा—उसका असमंजस दूर न हुआ, वह किसी और की प्रतीक्षा कर रही थी।

"भाभी कहाँ हैं ?" निर्मल ने भैया से अलग होते हुए उत्सुकतापूर्वक पूछा।

डाक्टर द्वारकादास ने बाहर के कमरे की ओर संकेत किया जहाँ अभी-अभी जानकी ने प्रवेश किया था। उसके पीछे-पीछे एक और स्त्री एक बच्चे को उठाये चली आ रही थी।

निर्मल भाभी को पुकारता हुआ उधर भागा और सहसा बच्चे को देखकर रुक गया। क्षण-भर वह बच्चे की ओर देखता रहा और फिर साश्चर्य जानकी की ओर मुड़कर बोला—

"भाभी ! यह क्या···?"

"मेरा मुन्ना···कैसा है।"

"किन्तु, भाभी···इतना बड़ा···" उसने विस्मय भरी दृष्टि से फिर बच्चे को देखा।

"क्यों इसमें आश्चर्य क्या है ? क्या मुन्ना बड़ा नहीं हो सकता।"

"किन्तु तरुण तो कह रही थी कि थोड़े दिन की बात है··· तुम आज ही हस्पताल से आ रही हो।"

"हस्पताल से" अब जानकी ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ···तुम्हारे लड़का पैदा हुआ है···"

इतने में तरुणा बाहर आ गई और भाभी को आँखों के संकेत द्वारा कुछ समझाने का प्रयत्न करने लगी। डाक्टर द्वारकादास ने उन्हें संकेत करते हुए देख लिया और निर्मल के कंधे पर हाथ रखते हुए उसका ध्यान उस ओर आकर्षित किया। चारों की दृष्टि मिली और चारों अनायास हँसने लगे।

"निर्मल ! तू बिना सूचना दिये अचानक कैसे आ गया ?" बड़ी कठिनाई से हँसी रोकते हुए जानकी ने पूछा।

"भाभी की याद आ गई···भागा चला आया।"

"भाभी की या भाभी की देवरानी की···?"

डाक्टर द्वारकादास फीकी-सी हँसी हँसने लगे। तरुणा लजा

कर पीछे हट गई और दबे पाँव अपने कमरे में चली आई। उसका मन हर्ष से फूल उठा था। उसकी योजना सफल हो गई थी—सूरज उसके घर में आगया था—और फिर निर्मल से उसका विनोद अच्छा ही रहा—किसी ने भी बुरा न माना था। द्वार के पर्दे से लगी वह उनकी बातें सुनने लगी।

डाक्टर द्वारकादास निर्मल को बता रहे थे कि उन्होंने आश्रम में पाँच सौ रुपया देकर कानून द्वारा सदा के लिए ले लिया है और अब वह उसे अपना बेटा बना कर रखेंगे। निर्मल ने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और उसे प्यार करने लगा।

"कैसा है, निर्मल !" जानकी ने पूछा।

"बहुत प्यारा है···किन्तु नाक कुछ छोटी है।" निर्मल ने बच्चे की नाक दबाते हुए कहा।

"इसीलिए तो लाई हूँ इसे—बचपन में तुम्हारी नाक भी ऐसी ही थी।"

"किन्तु तुम क्या जानो ?"

"माँ जी कहती थीं—और तुम्हारी फोटो···।"

अभी बात उसके मुँह में ही थी कि बच्चे ने रोना आरम्भ कर दिया। जानकी उसे अपनी बाहों में लेकर चुमकारने लगी किन्तु, उसने रोना बन्द न किया।

बच्चे का रोना सुनकर तरुणा का मन व्याकुल होने लगा। उसने झट अलमारी में से चाबी वाली मोटर निकाली और उसे लिए हुए बाहर आ गई। निर्मल ने उसके हाथ से मोटर ले ली और चाबी घुमा कर उसे फर्श पर छोड़ दिया। खिलौने को देखकर बच्चे ने रोना बन्द कर दिया और उसे पकड़ने के लिये उसके पीछे भागने लगा। बच्चे को खेलते हुए देखकर तरुणा की आँखों में प्रसन्नता के आँसू भर आए।

डाक्टर द्वारकादास ने उसके आँसू देख लिए। उन्हें सहसा कोई

विचार आया और वह अपने कमरे में चले आये।

जब डाक्टर द्वारकादास चले गये तो तरुणा ने जानकी से कहा—

"भाभी ! मेरी बात मानो और आया की छुट्टी कर दो।"

"तो दिन भर इसे कौन सम्भाले रखेगा।"

"इसकी चिन्ता न करो···मैं जो हूँ।"

"हाँ भाभी ! इसे भी तो कोई काम-काज नहीं···मन लगाने के लिए एक खिलौना चाहिये ही।" यह कहकर निर्मल तरुणा की ओर मुस्कराते हुए देखकर दूसरे कमरे में चला गया। तरुणा बच्चे से खेलने लगी।

जब तरुणा कमरे में लौटी तो निर्मल नहाने के लिए तैयार हो रहा था। गर्दन पर तौलिया लपेटते हुए उसने प्यार से तरुणा को देखा और बोला—

"झूठी कहीं की···"

"कौन ? मैं ? क्या झूठ कहा है मैंने ?"

"यही, भाभी के बेटा हुआ है।"

"तो क्या बेटी हुई है ?"

"बातें बनानी बहुत आ गई हैं—प्रसन्न तो ऐसे दीख रही हो जैसे अपना ही हो···"

"तो इसमें क्या संदेह है।"

"क्या···?"

"मेरा अभिप्राय है, अपना ही है···और फिर मुझे तो बड़ा प्यारा लगता है—जानते हैं क्यों ?"

"क्यों ?"

"रंग-रूप कुछ-कुछ आपसे मिलता है।" तरुणा ने रुक-रुक कर यह शब्द कहे और बाहर भाग गई।

आज वह अति प्रसन्न थी। उसका मन फूला न समा रहा था। आज उसका 'सूरज' और 'निर्मल' दोनों उसके पास थे—दुख के दिन

कट गए थे···नाव मंझधार से निकल आई थी···उसे खेवनहार मिल गया था और किनारा भी।

घर भर में आज एक विशेष गहमा-गहमी थी। हर कोई किसी-न-किसी कार्य में व्यस्त था। भैया और निर्मल बातचीत में लगे हुए थे। जानकी को नये बालक की आव-भगत से अवकाश न था मानो कोई ब्याह रचा हो।

तरुणा के हाथ तो खाना बनाने में लगे थे किन्तु; उसके कान निर्मल और भैया की बातों पर लगे थे। उसे अभी तक निर्मल से अकेले में बैठकर बातचीत करने का अवसर न मिला था। उसके हर्ष का कोई ठिकाना न रहा जब उसने निर्मल को भैया से यह कहते सुना कि उसने मकान का प्रबन्ध कर लिया है और वह अगले सप्ताह में तरुणा को ले जायेगा। तरुणा के हृदय में फुलझड़ियाँ सी फूटने लगीं और उसके हाथ और तेजी से काम करने लगे।

अब उसे इस बात की चिन्ता न थी कि वह सूरज' से दूर चली जाएगी। वह जानती थी कि अब वह उन सुरक्षित हाथों में आ गया है जहां किसी प्रकार की चिन्ता का स्थान नहीं। वह सोचने लगी, हो सकता है उसके दूर रहने पर भैया के मन में उसके प्रति काँटा निकल जाय···यदि वह यहाँ रही तो सूरज से उसका स्नेह बढ़ना प्राकृतिक था और सम्भवतः उनको यह अच्छा न लगे···उसके लिए यही उचित था कि वह भैया और भाभी से दूर रहे जिससे बच्चा भैया और भाभी से घुलमिल जाये। वह जान-बूझकर उससे दूर-दूर ही रहती और प्रायः उसे रोता हुआ देखकर भी न उठाती कि कहीं उसका ममत्व इतना न उमड़ पड़े कि कोई उसे शंका की दृष्टि से देखे।

एक दिन शाम को सब सिनेमा देखने गये और सूरज को घर में नगीना के पास छोड़ गये। जब लौटे तो नगीना रसोई घर में सो

रही थी। आस-पास दृष्टि दौड़ाने पर सूरज कहीं दिखाई न दिया तो

जानकी ने चिन्ता प्रकट करते हुए ऊँचे स्वर में उसे पुकारा और बोली—"अभी सो रही है क्या ?"

"जी—न जाने कब आँख लग गई ?" नगीना हड़बड़ा कर आँखें मलते हुए उठी।

"नन्हा कहाँ है ?"

"नन्हा···यहीं तो बैठा खेल रहा था···" उसने घबराहट से वहाँ संकेत किया जहाँ कुछ खिलौने बिखरे पड़े थे किन्तु; नन्हा न था।

इस विचार से कि कहीं खेल-कूद में इधर-उधर हो गया होगा उन्होंने गोल कमरे में कुर्सियों के पीछे और सोने के कमरों में चार-पाइयों के नीचे देखना आरम्भ किया किन्तु उसका कहीं पता न था। निर्मल और डाक्टर द्वारकादास बाहर सड़क तक भी देख आये। सब चिन्ता में थे कि बच्चा गया कहाँ। नगीना पर निरन्तर प्रश्नों की बौछार हो रही थी। जानकी को तो चिन्ता थी ही तरुणा के मन की दशा और भी व्यग्र थी, उसके हृदय में उठते ज्वार-भाटे का नुमकोई अन न लगा सकता था। बहुत छिपाने पर भी उसकी व्याकुलता छिपी न रह सकी।

डाक्टर द्वारकादास उसे बड़े ध्यान से देख रहे थे। बच्चे के प्रति इतनी चिन्ता देखकर उनके मन में फिर कई विचार उठने लगे। घाव फिर खुल गए, शंकायें जाग उठीं। वह अधिक चुप न रह सके और तरुणा को सुनाते हुए बोले—

"चलो···यह भी गया···हमारे भाग्य में पराई सन्तान भी नहीं···।"

"नहीं-नहीं भैया ! ऐसा न कहो···" तरुणा अनायास कह उठी और फिर उनकी कड़ी दृष्टि को देखकर एकाएक मौन हो गई। उसने मन में उठते तूफान को भीतर ही दबा लिया···ऐसा न हो कि उसके मुँह से भावना में आकर कोई शब्द निकल जाये।

"ओह ! तो तुमने भी उससे इतना प्यार बढ़ा लिया है।" डाक्टर द्वारकादास के शब्दों में हल्की-सी चुभन थी।

"जी···वह चला गया तो भाभी का सुख चैन चला जायेगा।"

"हाँ ठीक ही तो कहती है—" जानकी जो अब तक हक्का-बक्का मौन बैठी थी बोली, और फिर डाक्टर द्वारकादास की ओर देखते हुए बोली, "आप खोजिये न···कहाँ जा सकता है नन्हा।"

"इस समय रात को कहाँ खोजूँ !"

"पुलिस में सूचना दें···नहीं तो उसी आश्रम में पता करें।"

अभी जानकी ने बात समाप्त की ही थी कि एक स्त्री बाहर से सूरज को गोद में उठाये हुए भीतर आई। यह उनकी पड़ोसिन सीता थी।

सूरज को देखते ही सबके मुख पर हर्ष की लालिमा दौड़ गई। पर डाक्टर द्वारकादास के गम्भीर मुख पर कोई परिवर्तन न आया। जानकी अनायास बच्चे की ओर लपकी और बोली—

'कहाँ था नन्हा ?"

"सड़क पर अकेला जा निकला···मैंने देख लिया और उठाकर घर ले गई।" सीता ने उत्तर दिया।

जानकी ने क्रोधमयी-दृष्टि से नगीना की ओर देखा जिसकी असावधानी से यह हुआ था और सूरज को प्यार करने लगी। तरुणा के शरीर में बच्चे को देखकर मानो रुका हुआ रक्त फिर संचालित हो गया था किन्तु अपनी प्रसन्नता को प्रकट न करते हुए वह चुपचाप कमरे में लौट आई।

निर्मल की छुट्टी का सप्ताह क्षणों में ही समाप्त हो गया। तरुणा उसके साथ जा रही थी और अति प्रसन्न थी। वह इस वातावरण से बाहर निकल रही थी जहाँ वह सहमी और घुटी रहती, जहाँ डाक्टर द्वारकादास की संदेह भरी दृष्टि उसका पीछा करती। किन्तु; भाभी और मुन्ने को विदा करते हुए उसका मन भर आया

और वह धीरे-से भाभी के कान में बोली, "भाभी ! मुन्ने का ध्यान रखना...कहीं रोता न रहे।"

स्टेशन पर डाक्टर द्वारकादास और जानकी उन्हें छोड़ने के लिए आये। मुन्ना भी जानकी के साथ था। गाड़ी छुटने से पहले जब वह एक-दूसरे से मिलकर विदा ले रहे थे तो मुन्ने ने तरुणा की गोदी में आने के लिए बाहें फैला दीं। तरुणा उमड़ती हुई ममता को बलपूर्वक दबाये जा रही थी कि कहीं वह भावना-वश फिर डाक्टर द्वारकादास की संदेह-दृष्टि की पात्र न बने। उसने मुन्ने को उठाया नहीं बल्कि प्यार से उसके सिर पर हाथ फेर कर दूर ही खड़ी रही।

डाक्टर द्वारकादास ध्यान-पूर्वक तरुणा की आँखों के झिलमिलाते आँसुओं को निहार रहे थे। जब मुन्ने ने जानकी की बाहों में उछल-उछलकर जोर से चिल्लाना आरम्भ कर दिया तो उन्होंने उसे जानकी की गोद से ले लिया और तरुणा के पास ले जाते बोले—

"इससे न मिलोगी क्या ?"

तरुणा ने डाक्टर द्वारकादास की ओर लजाते हुए देखा और झट मुन्ने को अपनी बाँहों में लेकर चूमने लगी। उसके मन में उठती ममता की भावनाओं को देखकर डाक्टर द्वारकादास दूर हट कर निर्मल से बातें करने लगे। वह सोचने लगे--तरुणा माँ है...बच्चे को देखकर उसका मातृत्व जाग उठता है—नारी चाहे कैसी भी हो एक बार माँ बनने पर उसका मातृत्व हर बच्चे को देखकर जाग उठता है...किन्तु उसने अपने हाथों अपने बच्चे का खून क्यों कर किया होगा...इस विचार ने उनके मस्तिष्क पर एक चोट-सी लगाई और वह क्षण-भर के लिए मानसिक सन्तुलन खो बैठे—किन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें स्वयं अपने मन में इसका उत्तर मिल गया—नारी माँ है किन्तु लोक-लाज के लिए कभी-कभी अपनी सन्तान का गला भी घोंट सकती है—

वह इन्हीं विचारों में खोये हुए थे कि गार्ड ने सीटी बजा दी।

तरुणा और निर्मल शीघ्रता से अपने डिब्बे की ओर लपके । जानकी ने मुन्ने को तरुणा की गोद से ले लिया और बोली, "शीघ्र आना— तुम्हारे बिना अब घर नहीं अच्छा लगता ।"

गाड़ी चली गई और दोनों प्लेटफार्म पर खड़े उसे जाते देखते रहे । जब वह दृष्टि से ओझल हो गई तो जानकी ने अपनी आँखों में आये आँसू पोंछे और डाक्टर द्वारकादास के साथ बाहर आ गई । किन्तु, मुन्ना बार-बार हाथ उठाकर उधर ही संकेत कर रहा था जिस ओर गाड़ी गई थी । उसे भी तरुणा से बिछुड़ने का दु:ख था ।

आठ

तरुणा को कानपुर छोड़े हुए लगभग दो महीने हो चुके थे । इस बीच उसने जानकी को कई पत्र लिखे जिसमें उसने भैया की और नगीना की कुशलता तो पूछी किन्तु मुन्ने का कोई विशेष वर्णन न था । उसके सम्बन्ध में असाधारण चिन्ता प्रकट करके वह डाक्टर द्वारकादास के मन में कोई नई शंका न भरना चाहती थी ।

उसकी अनुपस्थिति में डाक्टर द्वारकादास भी उसे भूलकर मुन्ने की ओर आकर्षित होते जाते थे । जब तक घर में तरुणा थी, न जाने क्यों वह मुन्ने को प्यार करने से कतराते, उसे गोद में लेते हुए झेंपते और उसके लिए बाजार से कोई खिलौना लाते हुए घबराते थे । किन्तु अब तो रंग ही बदल गया था । उनको देखने वाला कोई न था । वह डिस्पैन्सरी से आकर उसी से खेलते रहते । अपनी प्यारी-प्यारी बातों से मुन्ने ने उनके मन में घर कर लिया था । जानकी मुन्ने के प्रति उनका बढ़ता हुआ स्नेह देखकर मन ही मन मुस्कराती

किन्तु; उन पर यह स्पष्ट न होने देती कि कहीं वह फिर मुन्ने से खिचे-खिचे न रहने लगें।

एक शाम वह शीघ्र घर लौट आये और मुन्ने के लिए ढेर से खिलौने लेते आये। जानकी ने इतने खिलौने देखकर साश्चर्य पूछा—

"यह क्या, पूरी दुकान ही उठा लाये ?"

"तो क्या हुआ•• हमारे बेटे का जन्म-दिवस क्या हर दिन आयेगा।"

"जन्म-दिवस•••कैसा जन्म-दिवस ?" जानकी ने फिर आश्चर्य प्रगट करते हुए पूछा।

"जानकी ! मुन्ने का जन्म-दिवस !•••आज जन्माष्टमी है भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ था आज—मैंने सोचा इसी शुभ दिन को हम सूरज का जन्म-दिन भी बना लें।"

"तो पहले कहा होता—सबको निमंत्रण भेज देते—'तरुण' को भी बुलाते—"

'तरुण' का नाम सुनकर डाक्टर द्वारकादास सहसा चिन्ता में पड़ गये। क्षण-भर के लिए उनके मुख पर आई हुई चमक बुझ गई और वह अपनी उँगलियों को भीचते हुए बोले—

"यह दिन हमारी खुशी का है•••लोगों के विनोद का नहीं।"

जानकी चुप हो गई और खिलौने सम्भालने लगी। उसने कमरे को ठीक ढंग से सजाया और सूरज को नया जोड़ा पहना दिया।

डाक्टर द्वारकादास और जानकी अब अनुभव करने लगे थे कि घर की वास्तविक प्रसन्नता के लिए सन्तान का होना कितना आवश्यक है। नन्हीं-नन्हीं हँसी और तुतली बातों में ही नवजीवन का सन्देश है। नन्हा भी अब इन दोनों में घुल-मिल गया था। जानकी से तो वह क्षण-भर के लिए अलग न होता।

दूसरे दिन फिरोजपुर से एक पार्सल प्राप्त हुआ। तरुणा ने एक सुन्दर स्वेटर बुनकर मुन्ने के लिए भेजा था। जानकी ने पार्सल

खोलकर स्वेटर द्वारकादास को दिखाया। वह सहसा सोच में पड़ गये। तरुणा के हाथों बच्चे की बुनी हुई स्वेटर ने मस्तिष्क पर चोट सी लगाई। उनकी आँखों के सम्मुख वह दृश्य फिर गया जब वह माँ बनकर उनकी डिस्पेंन्सरी में आई थी—भयानक वर्षा की रात में सहमी-सी वह उनके सामने बैठी थी—उसकी आँखों के आँसू सूख चुके थे—आशा और निराशा की मिश्रित भावनाओं में डूबे हुए स्वर में उसने डाक्टर द्वारकादास से प्रश्न किया था—

"डाक्टर ! तुम्हारी कोई सन्तान है ?"

"नहीं···" उसे पूरी बात अभी तक याद थी।

"यदि मैं अपने गर्भ में फूटती हुई इस कोंपल को दुनिया का प्रकाश दिखलाऊँ तो क्या आप उसे अपना सकेंगे ?" कुछ ऐसे ही शब्द उसने उस समय कहे थे।

जानकी उन्हें स्वेटर दिखा रही थी और वह बिना कोई बात किये मूर्ति बने उसे देख रहे थे। जब जानकी ने उनके मुँह से कोई प्रशंसा के शब्द न सुने तो स्वेटर उठाकर मुन्ने को पहनाते तोतली जबान में बोली—

"लो मुन्ने ! तुम्हारी छोटी माँ ने भेजा है···तुम्हारे जन्म-दिन का उपहार—बड़ी ममता से बुना है उसने···"

डाक्टर द्वारकादास के कानों में यह शब्द पड़े और वह काँप गये। स्वेटर में छिपी किसी नवजात शिशु की छवि उनकी आँखों में झलकने लगी। जानकी मुन्ने को स्वेटर पहनाकर देख रही थी। उन्होंने ध्यान-पूर्वक मुन्ने की ओर देखा। उन्हें यूँ लगा जैसे यह बच्चा भी किसी ऐसे ही पाप का परिणाम है और उसकी माँ भी समाज के डर से उसे आश्रम में छोड़ गई है। वह अपनी भूल पर पछताने लगे कि क्यों वह जानकी के कहे पर ऐसे बच्चे को अपने घर उठा लाये—यह पाप उनके आश्रय में पल रहा है। इस विचार ने उनके मस्तिष्क में कोलाहल मचा दिया। उनकी आँखों में अँधेरा-सा

छा गया।

"कैसा है स्वेटर ?"

जानकी के स्वर ने उन्हें चौंका दिया। मुन्ना स्वेटर पहने उनके सामने खड़ा था। जब डाक्टर द्वारकादास ने कोई उत्तर न दिया तो मुन्ने ने उनकी उँगली थाम ली और तुतले स्वर में बोला—

"बाबा। छ्वेतल आंती ने भेदा~"

डाक्टर द्वारकादास ने झटके-से अपना हाथ खींच लिया, मुन्ना गिरते-गिरते बचा और रोने लगा। जानकी ने लपककर उसे गोद में उठा लिया और उसे पुचकारते हुए पति से बोली—

"अजी यह क्या ? क्रोध किसी पर और दण्ड किसी को—चल मुन्ने। हम तेरी आंटी के कमरे में सोयेंगे—तेरे बाबा का मिजाज आज गर्म है—अब वह बुलायें भी तो उनसे मत बोलना···"

जानकी रोते हुए सूरज को लेकर बाहर चली गई। डाक्टर द्वारकादास चुप रहे और अल्मारी में लगी हुई पुस्तकों को टटोलने लगे।

बाहर जाते ही सूरज चुप हो गया किन्तु उनके मन में उठा कोलाहल शांत न हो रहा था। उन्होंने अल्मारी से एक पुस्तक निकाली और उसके पन्ने पलटने लगे। बड़ी रात गये तक वह अपनी चिन्ता को इन पन्नों में खोने का प्रयत्न करते रहे। बार-बार पुस्तक से दृष्टि उठाकर वह जानकी के बिस्तर को देखते किन्तु वह न आई। वह तरुणा के कमरे में जा सोई थी। उसके पास सूरज जो था उसका नन्हा-सा खिलौना जिससे वह अपना मन बहला सकती थी···वह सोचते रहे और पढ़ते रहे, पढ़ते रहे और सोचते रहे और यूँही रात ढलती गई।

सवेरे वह कुछ देर से उठे। जानकी ने भी उन्हें न उठाया। शायद वह अभी तक उनसे रुष्ट थी। बरामदे में आकर उन्होंने नगीना से पूछा—

"तुम्हारी मालकिन कहाँ है ?"

"नहा रही हैं।"

डाक्टर द्वारकादास ने दृष्टि घुमाकर स्नान घर की ओर देखा। भीतर से किवाड़ बन्द था और बाहर मुन्ना खड़ा धीरे-धीरे 'ममी-ममी' पुकार रहा था। उसके पतले से मधुर स्वर ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वह उसके पास आ खड़े हुए और उसकी ओर बढ़ते हुए बोले—

"मुन्ने ! आओ—"

मुन्ने ने दृष्टि ऊपर उठाकर उनकी ओर देखा और मुँह फेर कर खड़ा हो गया। डाक्टर द्वारकादास ने फिर उसे पुकारा। अब के मुन्ने ने अपनी रुष्टता जताने के लिए हाथों से अपना मुँह ढाँप लिया। डाक्टर द्वारकादास सोचने लगे रात उन्होंने अपने क्रोध का प्रदर्शन करके अच्छा नहीं किया—नन्हें से बालक के मन पर भी तनिक-सी बात का गहरा प्रभाव पड़ सकता है।

मुन्ने को गोद में उठाने के लिए वह नीचे झुक गए। ज्यों ही उन्होंने उसे उठाने के लिए हाथ बढ़ाया वह मुड़ा और अपनी नन्हीं-नन्हीं टाँगों से भागता हुआ तरुणा के कमरे में चला गया। डाक्टर द्वारकादास भी उसके पीछे भीतर पहुँच गये। मुन्ना श्रृंगार की मेज के पीछे छुपा खड़ा था। उन्होने कनखियों से उसे देखा और यह स्पष्ट करते हुए कि उन्होंने उसे नहीं देखा वह उसे कुर्सियों और पलंग के नीचे खोजने लगे। कुछ समय यूँही इधर-उधर खोजने और पुकारने के पश्चात् वह वहाँ जा खड़े हुए जहाँ मुन्ना साँस रोके खड़ा था। उन्होंने उसे एक बार और पुकारा, "मुन्ने कहाँ हो ?" और झट पीछे से हाथ बढ़ाकर उसे उठाते हुए बोले, "हमने पकड़ लिया··· मुन्ने को पकड़ लिया।"

मुन्ने ने उनकी गोद में आकर चिल्लाना आरम्भ कर दिया और ममी-ममी पुकारकर कमरा सिर पर उठा लिया। डाक्टर द्वारकादास

उसे बहलाते हुए बोले—

"मुन्ने ! तुम्हें बाज़ार से ढेर सारे खिलौने ला देंगे—मोटर—शेर···और टाफी लेगा ना—अरे बाबा से नहीं बोलेगा ?" यह कहते हुए उन्होंने उसका मुँह अपनी ओर किया और प्यार करने लगे।

इतने में उनकी दृष्टि जानकी पर पड़ी जो देहली पर खड़ी उनकी ओर देखकर मुस्करा रही थी। ममी को देखकर मुन्ना उनकी गोद से निकलकर भागा और उसकी टाँगों से जा लिपटा। जानकी ने उसे बाँहों में उठा लिया और पति की ओर मुस्कराकर देखते हुए बोली, "मुन्ने ? क्या हुआ ? बाबा ने फिर धकेल दिया—अच्छा कोई बात नहीं···वह बाबा जो हुए···भले तुझे मारें, तुझ से रूठें··· किन्तु तू उन्हें क्षमा कर दे···मेरा अच्छा बेटा।"

डाक्टर द्वारकादास ने उसके व्यंग भरे शब्दों की चुभन को अनुभव किया और बिना कोई बात किए लम्बे-लम्बे डग भरते कमरे से बाहर चले गये। जानकी ने उन्हें क्रोध से बाहर जाते देखा और मन-ही-मन मुस्कराती हुई अपने बालों में कंघी करने लगी।

"ममी ! बाबा फिल मुझे मालने लगे थे—" ड्रैसिंग टेबिल पर बैठी हुई जानकी की साड़ी के पल्लू को छूते हुए तुतले शब्दों में मुन्ने ने कहा।

"नहीं मुन्ने···तेरे बाबा ऐसे नहीं···वह तो तुझे बड़ा प्यार करते हैं···जो अपने बाबा के पास।"

"नहीं, नहीं ममी ! वह मालेंगे।"

जानकी ने उसे फिर गोद में उठा लिया और प्यार करने लगी। वह सोचने लगी उसके पति उससे रुष्ट थे उन्होंने उसे बुलाया भी नहीं। वह रात-भर तरुणा के कमरे में अकेली पड़ी रही और उन्होंने आकर देखा भी नहीं···अब थोड़ी देर में वह काम पर चले जाएंगे और वह दिन-भर बैठी अकेली कुढ़ती रहेगी···न जाने क्यों वह किसी से अधिक समय तक रुष्ट न रह सकती और फिर वह तो उसके पति

थे—किन्तु उन्हें क्योंकर मनाये···? उसने कौन-सा अपराध किया है···वह स्वयं हार क्यों माने···?

सहसा उसे एक उपाय सूझा और उसने मुन्ने के कान में धीरे-से कोई बात कही। मुन्ना बात सुनकर मुस्कराने लगा और माँ की गोद से उतर कर बाहर चला गया।

डाक्टर द्वारकादास अपने कमरे में बैठे पत्रिका देख रहे थे। आँखें तो उनकी पत्रिका में लगी थीं किन्तु ध्यान और कहीं था। उनके कानों में अब तक जानकी के व्यंग भरे शब्द गूँज रहे थे—विचित्र बात तो यह थी कि उसने उन्हें मुन्ने को गोद में उठाये प्यार करते देख लिया था। पत्रिका में उनका मन न लगा।

सहसा उन्होंने अपने सामने मुन्ने को खड़े देखा। उसके हाथ में दाढ़ी बनाने के लिए गर्म पानी और तौलिया था। प्याले के बोझ से उसका हाथ काँप रहा था। डाक्टर द्वारकादास आश्चर्य से उसे देखने लगे।

"बाबा! छेव का पानी।" मुन्ने ने पानी और तौलिया उनकी ओर बढ़ाते हुए तोतली भाषा में कहा।

डाक्टर द्वारकादास ने प्याला उसके हाथ से ले लिया।

"बाबा! ममी छे न बोलोगे?" मुन्ना फिर बोला।

"नहीं।" डाक्टर द्वारकादास के होठों पर मुस्कान लौट आई।

"क्यों?"

"हम तुम्हारी···ममी से लड़े हुए हैं।"

"क्या बले भी ललते है?"

"हाँ लड़ते हैं···और जानते हो हम क्यों लड़े हैं?"

"नहीं मैं नहीं दानता।"

"तुम्हारी ममी कहती थीं तुम उनके बेटे हो और मैं कहता हूँ तुम मेरे बेटे हो, अब तुम बताओ तुम मेरे बेटे हो ना?"

"ऊँ हूँ···" मुन्ने ने सिर हिलाया।

"ममी के ?"

"ऊँ हूँ···"

"तो किसके बेटे हो ?" डाक्टर द्वारकादास ने झट पूछा ।

"दोनों के—" मुन्ने ने धीरे से-कहा ।

इसी समय पर्दे के पीछे खड़ी जानकी बाहर निकल आई और प्यार से मुन्ने को उठाकर साथ वाले छोटे कमरे में ले गई। डाक्टर द्वारकादास उसे देखकर झेंप गये और चुपचाप शीशे के सामने बैठकर दाढ़ी बनाने लगे ।

थोड़ी देर बाद मुन्ना फिर बाहर आया और पलंग पर उनके कपड़े रखते हुए बोला—

"यह आपकी पैंत और यह कमीद···"

डाक्टर द्वारकादास दाढ़ी बनाते-बनाते रुक गये और मुड़कर मुन्ने की ओर देखते हुए बोले—"हमारी बनियान कहाँ है ?"

"बाथ-लूम में लखदी ।" वह झट से बोला ।

इतने में जानकी फिर बाहर आई। दोनों की दृष्टि मिली और डाक्टर द्वारकादास गालों पर तेज-तेज साबुन लगाये लगे। उन्होंने शीशे में से देखा जानकी मुन्ने का हाथ थामे बाहर जा रही थी। वह मन-ही-मन उसके विषय में सोचने लगे। वह भी उनसे बोलने के लिए व्याकुल थी किन्तु; उसे हार मानना स्वीकार न था। शायद उसका विचार होगा कि सदा की तरह अब के भी किसी न किसी बहाने उसे मना लेंगे···परन्तु वह क्यों मनाने लगे—अब की बार वह भी गिरना न चाहते थे। वह रात-भर तरुणा के कमरे में सोई रही तो उन्होंने भी रात चैन से न काटी। यही सोचते हुए वह दाढ़ी बनाकर स्नान-घर में चले गये।

नहाकर निकले तो कपड़े तैयार थे। कपड़े पहन चुके तो मुन्ना जूते उठा लाया। बाहर जाने लगे तो नगीना नाश्ता लिये आ पहुँची। मुन्ना भी उसके साथ था। नाश्ता रखकर नगीना बाहर चली गई।

मुन्ना वहीं खड़ा रहा और बोला—

"काओ बाबा।"

"नहीं मुझे नाश्ता नहीं करना।"

"क्यों ?"

"जाओ बड़ों की बातों में नहीं आते—नगीना से कहो उठाकर ले जाये।"

मुन्ना अवाक् उनकी ओर देखने लगा। डाक्टर द्वारकादास क मुख पहले से गम्भीर हो गया था। इतने में पर्दे के पीछे से जानकी बाहर निकली और मुन्ने से बोली—

"मुन्ने ! अपने बाबा से कह दो अब अधिक दुःखी न करें… चाय पी लें।"

मुन्ने ने ममी की बात दोहरायी। डाक्टर द्वारकादास ने छिपी दृष्टि से जानकी की ओर देखा और मुन्ने के बालों को प्यार से खुजाते हुए कहा—"मुन्ने ! अपनी ममी से कह दे—स्वयं खाले, मैं न खाऊँगा।"

"ममी ! तुम कालो…" मुन्ने ने जानकी का हाथ पकड़ते हुए कहा।

"नहीं मुन्ने ! बाबा से कह दो वह न खायेंगे तो घर में सब भूखे रहेंगे।" जानकी ने बलपूर्वक मुख पर क्रोध के चिन्ह उत्पन्न करते हुए कहा।

"ममी ! तुम कहो…" मुन्ने ने झुँझलाते हुए कहा और बाहर निकल गया।

जानकी मेज पर लगा हुआ नाश्ता उठाने लगी। डाक्टर द्वारकादास ने तिर्छी दृष्टि से उसे देखा और ज्यों ही वह चाय की ट्रे लेकर बाहर जाने लगी वह मुस्कराते हुए उसका रास्ता रोककर सामने खड़े हो गये। जानकी ने दृष्टि उठाकर उन्हें देखा और हटकर निकलने का प्रयत्न करने लगी।

"यह क्या ?" डाक्टर द्वारकादास ने उनकी बांह पकड़कर मुस्कराते हुए पूछा।

"आप नाश्ता नहीं करेंगे।"

"यह मैंने कब कहा ?"

"अभी तो आप मुन्ने से कह रहे थे।"

"कहा था अकेले नाश्ता नहीं करूंगा—किन्तु जब तुम साथ दो···"

"हटिये···अब बनाने लगे—"

डाक्टर द्वारकादास ने नाश्ते की ट्रे उसके हाथों से लेकर फिर मेज पर रख दी और उसके कंधों पर दोनों हाथ रखकर उसका मुंह अपनी ओर घुमाकर उसकी आंखों में झांकने लगे। जानकी की आंखों में आंसू भर आये। डाक्टर द्वारकादास ने अपनी उंगलियों से उसके आंसू पोंछते हुए उसे खींचकर गले से लगा लिया।

"तुम्हें भी क्रोध आता है क्या ?" उन्होंने नम्र स्वर में उसका मुख उठाते हुए पूछा—

"क्यों ? यह आप ही की सम्पत्ति है क्या···हम भी इन्सान हैं, हमारे भी हृदय है।"

डाक्टर द्वारकादास ने सहारा देकर उसे अपने सामने कुर्सी पर बिठा लिया और दोनों मिलकर नाश्ता करने लगे। थोड़ी देर बाद मुन्ना भी बाहर से लौट आया और दोनों को इकट्ठे खाते हुए देखकर वहीं खड़ा आश्चर्य प्रगट करते मुंह बनाकर बोला—"अच्छा यमदा···"

"क्या समझे मुन्ने ?" जानकी ने उसे अपने निकट खींचते हुए पूछा।

"मुझे बाहल भेद दिया···बाबा छे बोलने को···"

"मैं नहीं बोली उन्होंने ही बुलाया है।"

"हां मुन्ने हमीं ने बुलाया है। तुम्हारी ममी को···"यह कहते हुए डाक्टर द्वारकादास ने मुन्ने को उठाकर अपनी गोद में बिठा

लिया और प्यार करने लगे।

दिन हंसी खेल में बीत गये। मुन्ने ने उनके जीवन में प्रकाश भर दिया था। पति-पत्नी दोनों उस पर प्राण देते थे। उसे छींक भी आती तो चिन्तित हो जाते और लाख-लाख उपाय करते। कोई नया खिलौना कहीं भी दिखाई दे जाता मुन्ने के लिए अवश्य पहुँच जाता। घर में हर स्थान पर खिलौने ही खिलौने दिखाई देते मानो मेला लगा हो। वास्तव में सन्तान के सुख को अब ही तो वह अनुभव कर पाये थे। मुन्ने ने अपनी भोली-भाली, मीठी-मीठी बातों और नटखटता से उन्हें मोह लिया था। उन्हें एक केन्द्र मिल गया था जिसके गिर्द उन दोनों के जीवन घूमने लगे।

किन्तु एक दिन डाक्टर द्वारकादास की यह नन्हीं-सी दुनिया छिन्न-भिन्न हो गई···प्रसन्नता की चढ़ती हुई पींग की डोरी सहसा किसी ने काट डाली हो और वह धड़ाम से नीचे आ गिरे हों पुराने विचारों ने फिर उनके मस्तिष्क में बवण्डर उत्पन्न कर दिया।

तरुणा लौट आई थी। निर्मल भी उसके साथ आया था। अबके वह अवकाश पर न था बल्कि उसे छोड़ने के लिए आया था। उसे एक वर्ष के लिए किसी कोर्स पर पूना जाना था। उसका कानपुर में ठहराव केवल एक सप्ताह के लिए था।

तरुणा को इतने लम्बे समय के लिए निर्मल से अलग रहने का जितना खेद था उतनी ही उसे सूरज के निकट रहने की प्रसन्नता भी थी। डाक्टर द्वारकादास को तरुणा के आने का कोई दुख न था, उन्हें दुख था तो इस बात का कि वह अब खुल्लम-खुल्ला मुन्ने से प्यार न कर सकेंगे। न जाने क्यों तरुणा के सम्मुख मुन्ने के प्रति स्नेह प्रगट करते वह घबराते थे।

जानकी तरुणा के आने से प्रसन्न थी। उसे काम में हाथ बटाने वाला मिल गया। दिन भर मुन्ने में लगे रहने के कारण उसे किसी

की सहायता की आवश्यकता थी।

घर में पहुँचने से पूर्व तरुणा सूरज के लिये बड़ी चिन्ता में थी कि न जाने उसकी अनुपस्थिति में उसके लाल की क्या दशा हो। किन्तु घर में पहुँचते ही उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही जब उसने देखा कि घर भर में उसके मुन्ने का ही राज्य था। उसे देखते ही उसका मातृत्व उमड़ आया किन्तु; उसने धैर्य से काम लिया और उसे थोड़ा-सा प्यार करने के बाद अपने कमरे में चली आई।

उसके कमरे में स्थान-स्थान पर मुन्ने के खिलौने बिखरे हुए थे। जानकी ने यह उसके खेलने का कमरा बना रखा था। वह नगीना को साथ लेकर उसके पीछे पीछे ही वहाँ पहुँच गई और बिखरे खिलौनों को उठाकर संभालने का आदेश देने लगी।

"रहने दो भाभी ! मैं स्वयं संभाल लूँगी, तुम्हारा बेटा है तो क्या मेरा कोई नहीं।"

"है---किन्तु; इस कबाड़ में कैसे रहोगी ?"

"जैसे पहले रहती थी।"

"निर्मल बिगड़ गया तो···"

"उनसे मैं समझ लूँगी···किन्तु मुन्ने की यह नन्हीं-सी दुनिया यहाँ से उठ गई तो कमरे की पूरी सुन्दरता चली जायेगी।"

दोनों की पलकें एक साथ प्रसन्नता से भीग आईं। उनकी प्रसन्नता का केन्द्र एक था किन्तु; कारण अलग-अलग।

नौ

"भाभी ! खाना शीघ्र बन जाये तो चलें।"

"कहाँ ?"

"सिनेमा का प्रोग्राम है।"

"तथास्तु···तुम तैयार हो जाओ खाना अभी बना।"

"किन्तु; अकेले नहीं···आप और भैया भी साथ चलेंगे।"

"कौन-सी फिल्म है ?"

"जॉनी बिलंडा (Johini Belinda)।"

"अंग्रेजी ! न भाई-तुम ही जाओ।"

"भाभी देखना कितनी अच्छी है···ऐसी समझ आयेगी···"

"अब रहने दे यह बातें···"

निर्मल चुप हो गया और चाय पीने लगा। भैया और तरुणा भी चाय पीते हुए देवर भाभी की बातें सुन रहे थे। थोड़ी देर यूँही मौन रहा और फिर भैया बोले—

"निर्मल तुम्हीं दोनों देख आओ ना—हमें रहने दो।"

"कुछ मैं भी कहूँ !" तरुणा बीच में बोली।

"क्यों नहीं—सब कुछ कहो।" डाक्टर द्वारकादास ने सब पर बल देते हुए कहा।

"आप दोनों हो आइये···हम घर रहेंगी।"

"नहीं, ऐसा तो···"

"मानिये तो···और दूसरी बात रात के स्थान पर शाम को ही शो देख आईये···खाने के समय पर आ जाईयेगा···इकट्ठे ही खायेंगे।"

"क्यों भैया ! विचार तो बुरा नहीं।"

डाक्टर द्वारकादास ने एक दृष्टि जानकी पर डाली और फिर दृष्टि घुमाकर तरुणा और निर्मल को देखा। निर्मल ने मुस्कराते हुए हाँ में सिर हिलाया। डाक्टर द्वारकादास कुर्सी छोड़कर खड़े हो गए और बोले—

"तो चलो समय बहुत थोड़ा है।"

दोनों भाई सिनेमा चले गये और घर पर तरुणा और जानकी रह गईं। तरुणा ने सिनेमा से अपना पिंड तो छुड़ाया था इसलिए कि उसे भैया के संग जाना अच्छा न लग रहा था और फिर अंग्रेजी

फिल्मों में खुल्लम-खुल्ला कुछ ऐसे दृश्य आ जाते हैं जिन्हें देख भरते हुए घावों के हरे हो जाने का भय था। किन्तु, जानकी को उसने जाने से क्यों रोक दिया यह भेद वह न समझ सकी।

जानकी नगीना के साथ रसोई घर में चली गई और तरुणा मुन्ने के साथ खेलने लगी। वह उससे अकेले में बात करने का अवसर ढूंढ रही थी। उसने मुन्ने को गोद में उठा लिया और पूछने लगी।

"मुन्ने तुम्हें कौन अच्छा लगता है···मम्मी या मैं ?"

इसी समय जानकी भीतर आई और तरुणा का प्रश्न सुनकर वहीं किवाड़ की ओट में खड़ी हो गई।

"ममी अत्ती लगती हैं।" मुन्ने ने असावधानी से उत्तर दिया।

"क्यों ? मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती क्या ?"

"अत्ती लगती हो···पल ममी बोत अत्ती लगती है।"

"अच्छा, मैं अच्छी लगती हूँ कि तुम्हारे निर्मल चाचा !"

"तुम।"

"क्यों ?"

"मुदे नहीं पता···थब अत्ते लगते हैं।" मुन्ना उसकी गोद से उतरकर बाहर जाने की चेष्टा करने लगा। तरुणा ने प्यार करके फिर पूछा—

"एक बात और बताओ, तुम्हें चाचा अच्छे लगते हैं कि बाबा···"

"बाबा थबते अत्ते हैं···वह बातें नहीं कलते, प्यार कलते हैं··· खिलौने देते हैं··· ताफी देते हैं···बौत तीदें देते हैं···"

यह सुनकर जानकी की हँसी छुट गई और वह झट किवाड़ के पीछे से बाहर निकल आई। तरुणा उसे एकाएक सामने देखकर घबरा गई। वह उसकी सब बातें सुन रही थी।

"अरी बच्चों का कौन अपना पराया होता है···जिसने दो घड़ी प्यार किया उसी के हो रहे।" जानकी ने हँसते हुए मुन्ने की ओर देखते हुए कहा।

"ठीक है भाभी—" तरुणा कुछ झेंप-सी गई।

"एक काम करो···"

"मैं ठाकुरों की आरती उतार लूं···तुम इसे दूध गर्म करके पिला दो।"

"अच्छा भाभी—" तरुणा उठी और सूरज के लिये दूध लेने चली गई। भाभी की साधारण कही हुई बात उसके लिए बहुत बड़ा प्रश्न बन गई थी। उसका मस्तिष्क तुरन्त इसे स्वीकार करने में असमर्थ था···क्या यह सच है कि सूरज उन्हीं का होकर रह जायेगा—क्या वह जीवन-भर यह कभी न जान पायेगा कि उसके वास्तविक माता-पिता उसके इतने निकट हैं किन्तु, वह उन्हें अपना नहीं कह सकता। उसके मस्तिष्क पर एक धुंधका-सा छाने लगा···। फिर सहसा विचार ने पलटा खाया और वह मन-ही-मन कहने लगी···तो क्या हुआ ? है तो वह उनके पास ही ना—आखिर भैया और भाभी को भी तो घर का दीपक चाहिये था—क्या इतना थोड़ा है कि वह उसे अपने ही जन्म दिये बेटे के समान प्यार करते हैं। उसकी आँखों के सामने ही तो वह लाड़-प्यार से पल रहा है—उसके लिये यह भूल जाना उचित है कि वह उसका बेटा है—वह अब डाक्टर द्वारकादास के घर का दीपक है—उसके हित के लिये उसे यह बलिदान करना ही होगा।

दोनों भाई सिनेमा देखकर लौटे तो खाना मेज पर लगा हुआ था। डाक्टर द्वारकादास ने कुर्सी पर बैठते हुए मुन्ने को पूछा।

"सो गया है।" तरुणा ने धीमे से उत्तर दिया ?

"कहिये तो जगा दूं···" जानकी जो रसोई घर से निकल रही थी ऊंचे स्वर में बोली।

"नहीं, नहीं···अब आओ भी···भूख के मारे बुरी दशा हो रही है।" निर्मल ने नगीना के हाथ से डोंगा लेकर अपनी प्लेट में सब्जी उंडेलते हुए कहा।

जानकी भी आ गई और सब खाना खाने लगे। वास्तव में उन्हें बड़ी भूख लगी थी। जानकी और तरुणा उनके मुख की ओर देखे जा रही थीं। आखिर जानकी ने मौन तोड़ते हुए बात आरम्भ की—

"कैसी थी ?"

"क्या ?" डाक्टर द्वारकादास ने ग्रास उठाते हुए पूछा।

"फिल्म—क्या नाम था जानी..."

"जानी बिलंडा।" निर्मल ने नाम पूरा करते हुए कहा।

"बहुत अच्छी थी...तुम्हें अवश्य अच्छी लगती।" डाक्टर द्वारकादास ने पत्नी की ओर देखते हुए कहा।

"कहानी क्या थी ?"

"भाभी ! यह भी कोई कहानी कहने-सुनने का समय है—पहले इष्ट देवता को भोग तो लगा लें।" निर्मल ने एक बड़ा-सा ग्रास मुँह में ठूँसते हुए कहा। इस पर सबकी एक साथ हँसी छूट गई।

"निर्मल ! तुमने यह पठान और बनिये की बात नहीं सुनी ?"

"क्या ?"

"हाँ जी ! सुनाइये—उचित अवसर की बात है।" जानकी ने उत्सुकतापूर्वक कहा और साथ बैठी तरुणा की चुटकी ली। वह चुपचाप बैठी नीची दृष्टि से उन्हें देख रही थी।

"बनारस की बात है शायद—एक सराय में एक पठान और बनिये की मित्रता हो गई।" डाक्टर द्वारकादास ने सबको उत्सुक देखकर कहना आरम्भ किया।

"तब !" जानकी ने पूछा।

"एक दिन दोनों मिलकर किसी होटल में खाने बैठे और अपनी मित्रता को दृढ़ करने के लिये उन्होंने एक ही थाली मंगवाई।"

"फिर !" निर्मल ने एक और ग्रास तोड़ते हुए पूछा—

डाक्टर द्वारकादास क्षण-भर चुप रहे फिर कहने लगे—"बनिये ने देखा कि जितनी देर में वह एक ग्रास खाता है, पठान सारी रोटी

खा लेता है और उसके लिए कुछ नहीं बचता । ऐसे तो वह घाटे में रहेगा, यह सोचकर वह पठान को बातों में लगाने का उपाय सोचने लगा । पठान ने इतनी देर में तीन-चार रोटियाँ और समाप्त कर दीं···आखिर उसे एक उपाय सूझा ।"

"क्या ?" निर्मल ने डोंगे में से और सब्जी उँडेलते हुये पूछा ।

"उसने झट पठान से प्रश्न किया···"हो खान ! तुम्हारा बाप कैसे मरा ?"

"तो···" जानकी के होंठ कंपकंपाये ।

"फिर क्या था, खान साहब ने मूँछों पर ताव दिया और लगे ऐंठकर अपने परिवार की बड़ाई करने । लाला ! हमारे बाप के बाप का अंग्रेज से दुश्मनी था खू ! वह बड़ा बहादुर था·······उसने कई अंग्रेज गोली से उड़ा दिये···सरकार ने उसको पकड़ने के लिये बड़ा इनाम रखा लेकिन उससे सब डरता था···वह भागकर इलाका गैर में चला गया । एक दिन वह अचानक लड़ते हुए मारा गया···फिर हमारा बाप को पकड़ने के लिये आदमी आया···वह फरार हो गया और फिर बड़ा डाकू बन गया । एक दिन धोका से पकड़ा गया फिर उसको सजा हुआ और वह जेल में मारा गया ।

खान जब अपने पिता की मृत्यु की बात सुनाकर नीचे झुका तो थाली साफ थी । बनिये का दाव चल गया था । बड़ा सटपटाया किन्तु क्या करता आखिर वह मित्र था । बोला, "लाला ! अभी भूख बाकी है—एक थाली और···बनिये ने हाँ कही और दूसरी थाली भी आ गई । अबकी बार खान ने बनिये को बातों में लगाये रखने की सोची और जैसे ही उसने पहला ग्रास उठाया बोला, "लाला ! खू ! तुम्हारा बाप कैसे मरा ?"

लाला ने बड़ा-सा ग्रास मुँह में डाला और खान की ओर मुस्करा कर देखते हुए बोला, "खान ! क्या कहूँ ··एक दिन छत पर चढ़ा, सीढ़ियों से पैर फिसला और गिरकर मर गया । बनिये ने बात

समाप्त कर दी और फिर खाने लगा। पठान को बड़ा क्रोध आया और गले से उसे पकड़कर चिल्लाया, "नहीं लाला ! तुम्हारा बाप इतनी जल्दी नहीं मर सकता।" बनिया गला छुड़ाते हुए चिल्लाया, "खान ! क्या करता है…मर जो गया—मैं क्या करूँ ?" पठान ने उसका गला छोड़ दिया और बनिया फिर से खाने लगा।

डाक्टर द्वारकादास की बात पर एक ऊँचा ठहाका कमरे में गूँजा, नगीना भी जो पास खड़ी ध्यानपूर्वक इनकी बातें सुन रही थी, अपनी हंसी रोक न सकी और मुँह मे आंचल ठूँसकर रसोई-घर की ओर बढ़ी।

"लो ! यहाँ भी वही पठान वाली बात हुई।" सहसा जानकी ने निर्मल की ओर संकेत करते कहा, "आप खान बने रहे और निर्मल बनिये के समान सब चट कर गया।"

"वाह ! यह खूब रही।" डाक्टर द्वारकादास बोले और कमरे में एक और ठहाका गूँजा।

निर्मल डोंगे में से बचा हुआ भोजन अपनी प्लेट में डालते हुए बोला, "न जाने आज इतनी भूख क्यों लग रही है।"

तरुणा चुपचाप बैठी सबकी बातें सुनती रही। यह मीठी-मीठी घरेलू नोंक-झोंक उसे बड़ी भली लग रही थी।

खाने के बाद सब डाक्टर द्वारकादास के कमरे में जा बैठे। तरुणा ने अपने कमरे में जाना चाहा किन्तु; जानकी ने उसे पकड़कर रोक लिया। नगीना पान की गिलोरियाँ सजाकर ले आई। सबने एक-एक गिलोरी उठाकर मुँह में डाल ली। जब पानदान तरुणा के सामने आया तो वह बोली—

"नहीं, मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"तुम्हें और क्या अच्छा लगता है। अब तो लेना ही होगा।" यह कहते हुए निर्मल ने पान उठाकर बलपूर्वक उसके मुँह में ठूँस दिया। तरुणा डाक्टर द्वारकादास की उपस्थिति के कारण लज्जा

गई और आँखें नीची कर पान चबाने लगी।

"क्या थी वह कहानी निर्मल ! सुनें तो।" जानकी ने पान चबाते हुए निर्मल से कहा।

"कौन-सी ?"

"उस फिल्म की जो तुम लोग देखकर आये हो···जानी बिलंडा।"

"ओह···हाँ भाभी ! जानी एक लड़के का नाम था···"

"और बिलंडा लड़की का···क्यों ?" जानकी ने उसकी बात पूरी कर दी।

"हाँ, किन्तु; जानती हो दोनों का आपस में क्या सम्बन्ध था ?"

"यह भी भला कोई पूछने की बात है।"

"नहीं—वह नहीं जो तुम समझ रही हो···जानी बिलंडा का बेटा था।"

"अच्छा, मैं समझी जैसे लैला-मजनूँ, सोहनी-महीवाल वैसे यह जानी बिलंडा भी होंगे।"

"तुम क्या समझीं तरुण !" डाक्टर द्वारकादास ने एकाएक प्रश्न किया।

"जी !" तरुणा जाने किस विचार में खोई बैठी थी। डाक्टर द्वारकादास के प्रश्न से वह सहसा चौंक उठी मानो किसी ने झंझोड़कर जगा दिया हो। क्षण-भर चुप रही और बोली, "जी ! लैला मजनूँ, सोहनी महीवाल···"

इसकी इस बात पर सब खिलखिलाकर हँस पड़े और वह झेंप गई।

निर्मल ने बात का विषय बदला और बोला—

"हाँ भाभी ! सुनो बिलंडा एक ग्रामीण लड़की थी जो अपने पिता की पनचक्की पर उसकी सहायता किया करती थी···एक दिन भाग्यवश उसके पिता बीमार पड़ गये और काम पर न आ सके।"

"बिलंडा पनचक्की पर अकेली थी···"

'तो…" जानकी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"अचानक दो बदमाश पनचक्की पर आये और उन्होंने बिलंडा से आटे की एक बोरी माँगी।"

निर्मल क्षण-भर के लिए रुक गया। जानकी और तरुणा साँस रोके बात सुन रही थीं।

निर्मल ने बात जारी रखी, "भोली-भाली बिलंडा क्या जानती थी कि इनका आशय क्या है। बेचारी अकेली गोदाम में गई और आटे की बोरी खींचकर बाहर लाने लगी। अभी वह गोदाम के भीतर ही थी कि दोनों बदमाश उस पर झपटे और उसको बल-पूर्वक अपनी वासना का शिकार बना लिया।"

"क्या वह चीखी चिल्लाई नहीं। उसने अपना सतीत्व बचाने का कोई प्रयत्न नहीं किया ?"

"नहीं—वह विवश थी…वह गूंगी भी थी और बहरी भी… वह न सुन सकती थी न बोल सकती थी—वह किसी को भी सहायता के लिये न पुकार सकी—"

"तब क्या हुआ ?"

"वह प्रति-दिन उदास रहने लगी—उसने अपने मन की बात किसी से न कही…और कहती भी क्या…उसी गांव में एक डाक्टर था जो उसे संकेत द्वारा बातें करना सिखाया करता था। एक-दिन उसने संकेतों में डाक्टर पर अपना दुःख प्रकट कर दिया। डाक्टर को मानवता के नाते उस अबला लड़की से सहानुभूति हो गई…वह उसके दुःख समझने लगा…"

"फिर ?" दोनों स्त्रियाँ एक साथ बोल उठीं।

"ना समझ भोली-भाली लड़की यह न समझ सकी कि उसके पेट में पाप पल रहा था और वह माँ बनने वाली थी। गाँव भर में यह बात आग की भाँति फैल गई और लोगों ने उसके पिता को बुरा भला कहना आरम्भ कर दिया। पिता ने क्रोध में आकर बेटी को

पीटा। लोक लाज के डर से दोनों का बाहर निकला दूभर हो गया। बिलडा विवश थी···वह किसी को यह समझाने में असमर्थ थी कि वह स्वयं निर्दोष है···यह केवल उसका दुर्भाग्य है···इस कठोर दण्ड की पात्र वह नहीं···किन्तु उसने अपनी मौन भाषा में उस डाक्टर को सब कुछ बता दिया था···वह कुछ न कह सकती थी, हाँ रो सकती थी···और वह डाक्टर की बाँहों में मुँह छुपाकर फूट-फूटकर रोयी।"

निर्मल कहानी सुनाते-सुनाते एकाएक चुप हो गया। जानकी और तरुणा मूर्तिमान स्तब्ध-सी उसकी ओर देख रही थीं। डाक्टर द्वारकादस कभी-कभी तरुणा पर एक दृष्टि डाल लेते। वह उसके मुख पर बदलते रंग को देख रहे थे। शायद अतीत के पर्दे में छिपी पीड़ा उसके हृदय में फिर जाग उठी थी और वह उसकी असहनीय चुभन अनुभव कर रही थी। अचानक दोनों की दृष्टि मिली। तरुणा काँपकर रह गई और नीचे देखने लगी। निर्मल को चुप देखकर डाक्टर द्वारकादास बोले—

"आगे क्या हुआ···भूल गये क्या ?"

"नहीं तो·········हाँ भाभी ! डाक्टर ने लड़की की सहायता करने का निर्णय कर लिया···वह हर समय उसका ध्यान रखता और उन बदमाशों की खोज करता। उसने लड़की के पिता को भी समझाया···किन्तु इसका यह परिणाम हुआ कि वह स्वयं बदनाम हो गया। गाँव वालों ने उसी को लपेट में लिया और ब्रिलंडा का सतीत्व लूटने का दोष उसी के सिर थोप दिया।"

"फिर क्या हुआ ?" जानकी ने पूछा।

"वही जो ऐसी स्थिति में हुआ करता है· बदनामी, विवशता, गाली-गलोच···डाक्टर ने साहस से काम लिया और ब्रिलंडा को बचाने के लिए उसने उसकी बदनामी का उत्तरदायित्व अपने सिर लिया और उससे ब्याह कर लिया···ब्रिलंडा का जीवन बच गया— दुनिया वालों की जबान बन्द हो गई और वह उसे लेकर दूर किसी

दूसरे स्थान में चला गया।

ज्यों ही निर्मल ने कहानी समाप्त की डाक्टर द्वारकादास ने एक कड़ी दृष्टि तरुणा पर डाली। उसके पीले मुख पर पसीने की बूंदें यूं फूट आई थीं मानो उबलते हुए पानी से भाप निकलकर एकत्रित हो गई हो। जानकी मूर्ति बनी यूं बैठी थी जैसे उसने कोई अनहोनी बात सुन ली हो। सब मौन बैठे बिलंडा के विषय में सोच रहे थे।

"क्या सोच रही हो?" एकाएक डाक्टर द्वारकादास ने जानकी पर प्रश्न किया। वह स्तब्ध-सी बैठी शून्य में खोई हुई थी। चौंक गई और बोली, "कुछ नहीं।"

"कहानी कैसी थी?" डाक्टर द्वारकादास ने फिर पूछा।

"बहुत अच्छी···मैं तो पछता रही हूँ कि आपके संग क्यों न चली गई।"

"कल के लिए टिकट मंगवा दूं।"

"नहीं, अब क्या करना है···निर्मल ने घर पर ही फिल्म दिखा दी।"

"तो लाओ टिकट के पैसे।" निर्मल ने झट से हाथ फैला दिया और भाभी ने उल्टा अंगूठा उसकी हथेली पर रख दिया। इस पर सब हंस पड़े किन्तु तरुणा वैसे ही चुपचाप मूर्ति बनी बैठी रही मानो किसी ने धरती में गाड़ दिया हो। उसके शरीर में अब तक पसीना फूट रहा था।

जानकी ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा, "तुम कहाँ चली गईं?"

तरुणा उखड़ी-उखड़ी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। जानकी ने फिर पूछा, "देवी जी? क्या सोच रही हो?"

"कुछ भी तो नहीं।" तरुणा ने कुछ संभलते हुए उत्तर दिया।

"सोच रही है वह डाक्टर कितना अच्छा होगा जिसने बिलंडा

का जीवन नष्ट होने से बचा लिया।" होटों पर मुस्कराहट लाते हुए डाक्टर द्वारकादास ने तरुणा की ओर देखते हुए कहा।

"क्यों री ? यह सोच रही है ?" भाभी ने भी उसे छेड़ा।

"हाँ भाभी ! भैया सच कह रहे हैं···और कभी-कभी तो ऐसा लगता है जैसे वह डाक्टर हमारे भैया ही थे जिनके मन में सदा दूसरों के लिए पीड़ा और सहानभूति भरी रहती है।"

डाक्टर द्वारकादास तरुणा के मुँह से यह उत्तर सुनकर गम्भीर दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। उसने उनकी चुभती हुई बात का बड़ा उचित उत्तर दिया था।

"न भई न···ऐसी बातें न कहो···कहीं यह भी किसी की पीड़ा बाँटते-बाँटते उसी के हो रहे तो मैं कहाँ जाऊँगी।"

भाभी की इस बात पर एक ठहाका उठा और निर्मल और तरुणा अपने कमरे में जाने के लिए उठ खड़े हुए। तरुणा ने भैया के पाँव छुए और दोनों बाहर चले गये। जानकी भी किसी काम से रसोईघर में चली गई।

डाक्टर द्वारकादास अपने स्थान पर बैठे-बैठे तरुणा की बात पर विचार करने लगे। इस कहानी ने अवश्य उसके घाव को कुरेद दिया था किन्तु उसने किस सुन्दरता से उनकी बात काट दी···यद्यपि बाहर जाते हुए भी उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे।

निर्मल दो दिन बाद ही पूना चला गया। तरुणा को यूँ लगा मानो किसी ने खुले वातावरण से लाकर उसे फिर जेल में डाल दिया हो···किन्तु, अब वह जेल इतनी बुरी न थी···उसका सूरज उसके समीप था और घर का वातावरण भी उसके लिए इतना घुटा-घुटा न था। भाभी उसे अपनी विनोद भरी आवाज से प्रसन्न रखती और डाक्टर भैया भी अब उससे इतने खिचे-खिचे न रहते। उसकी बात-चीत के ढंग और शिष्टता ने उन पर पर्याप्त प्रभाव डाला था। घर में आते ही वह सब से पहले यही पूछते, "तरुणा कहाँ है ? कहीं वह

उदास तो नहीं ?"

एक दिन सूरज को बाँहों में उठाकर वह उसके सामने ले आये और बोले —

"तरुण ! एक बात कहूँ ?"

"जी ।"

"बचपन में हमारे निर्मल की सूरत बिल्कुल सूरज से मिलती थी ।"

भैया की बात सुनकर वह कांप गई किन्तु झट संभलते बोली, "मैं क्या जानूँ उनका बचपन ?"

डाक्टर द्वारकादास के हाथ में तसवीरों की एक एलबम थी । उन्होंने मेज पर मुन्ने को खड़ा किया और पन्ने उलटकर निर्मल की बचपन की तस्वीर तरुणा को दिखाई । उसमें और मुन्ने में वास्तव में कोई अन्तर न था । वह घबरा गई और भैया को अपनी ओर टकटकी लगाये देखकर सोचने लगी कहीं वह उसकी परीक्षा न ले रहे हों । क्षण-भर ध्यानपूर्वक तस्वीर को देखती रही और फिर बोली—

"सूरत तो इतनी नहीं मिलती, हाँ नाक बिल्कुल वैसी है ।"

वह चुप रहे और ध्यान से तस्वीर को देखने लगे । न जाने उनके मन में क्या विचार उठ रहे थे ।

कुछ देर रुककर फिर तरुणा बोली, "किन्तु; कान तो बिल्कुल आप से मिलते हैं ।"

उसकी इस बात पर पीछे खड़ी जानकी खिलखिला कर हँस पड़ी ।

दोनों ने झट एक साथ मुड़कर देखा । वह उनकी सब बातें सुन रही थी । पास आते बोली—

"हाँ तरुण ! यह कान······बड़े-बड़े······जैसे बचपन में कोई खींचता रहा हो ।"

डाक्टर द्वारकादास भी खिसियानी हंसी हँसने लगे और सूरज की उंगली पकड़कर अपने कमरे में चले गये।

दस

"एक बात है।" जानकी ने पति को सम्बोधित किया।

"क्या ?" डाक्टर द्वारकादास ने पुस्तक पर से दृष्टि उठाते हुए पूछा।

"पर कैसे बताऊं भेद की बात है।"

"कैसा भेद ?"

"तरुणा के जीवन का।"

जानकी के मुंह से यह शब्द सुनकर डाक्टर द्वारकादास चौंक गये और फटी-फटी दृष्टि से उसे देखने लगे। वह क्या कहना चाहती है, यह जानने के लिये वह व्याकुल हो उठे किन्तु, उससे स्वयं पूछने का साहस न हुआ। वह एक गहरे सोच में पड़ गये।

"आप ही कहिये, भला मैं आप से क्यों कर छिपाऊं···ऐसी बातें कहीं छिपी रह सकती हैं।" उसने क्षण-भर रुककर बात चालू रखी।

डाक्टर द्वारकादास ने हाथ में पकड़ी हुई पुस्तक नीचे रखदी और लेट गये। वह असमंजस में पड़ गए। वह कौन-सा भेद है ? क्या जानकी तरुणा की बात जान गई है, उससे किसने कहा ? क्या कहा ? उनकी बुद्धि में कुछ न आ रहा था और वह पूछने का साहस भी न कर पा रहे थे।

जानकी ने बत्ती बुझा दी और उन्ही के पलंग पर बैठ गई।

थोड़ी देर मौन रहा। फिर स्वयं ही बोली—"सो गये क्या ?"

"नहीं तो—प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"आपने सुना कुछ ?"

"क्या ?" वह कम्पित स्वर में बोले और पत्नी की बात सुनने के लिए साँस रोक कर लेट गये।

"हमारी तरुण है ना—" वह इतना कहकर रुक गई। डाक्टर द्वारकादास एकाएक उठकर बैठ गए और अंधेरे में पत्नी की ओर देखने लगे। वह उनके और समीप हो गई और कुर्ते के बटनों को उँगलियों से टटोलते हुए धीरे से बोली "वह माँ बनने वाली है।"

यह कहकर जानकी ने अपना सिर उनके वक्ष पर रख दिया और उनके हृदय की धड़कन सुनने लगी।

"तुमसे किसने कहा ?" उन्होंने उसका मुँह सामने करते हुए पूछा, उनके स्वर में एक विशेष कम्पन था।

"स्वयं तरुण ने···और मुझसे यह सौगन्ध ली है कि मैं किसी से न कहूँ।"

"और तुमने अपनी सौगन्ध तोड़ दी ?"

"आपसे झूठ कैसे कहूँ—यह बात भी भला आपसे छिपाने की है ?"

"निर्मल को लिख दिया क्या ?"

"नहीं···मेरे अतिरिक्त यह बात उसने किसी से नहीं कही।"

"मैं तो जान गया।"

"तो क्या हुआ—आप तो किसी से नहीं कहेंगे।"

"तो देखो···उसको मत बताना कि मुझे भी इसका ज्ञान है।"

"यही तो मैं आपसे कहने वाली थी···मैंने सौगन्ध खा रखी है।"

डाक्टर द्वारकादास चुप हो गए। उनके मस्तिष्क में कई प्रकार के विचार उठने लगे। हर बार खिलते-खिलते उनके हृदय-पुष्प पर कोई धूल सी बिखर जाती थी, कोई ऐसी मानसिक चोट-सी आ

लगती कि वह फिर सिमट जाता। जानकी अत्यधिक प्रसन्न थी। उसकी अपनी कोई सन्तान न थी, किन्तु; निर्मल के घर का दीपक भी तो उसके घर को प्रकाशमान कर सकता है···

सवेरे चाय की मेज पर बैठे डाक्टर द्वारकादास बार-बार छिपी दृष्टि से तरुणा को देख रहे थे। वह लजाई-सी आँखें नीची किये उनसे दृष्टि मिलाने का साहस न कर पा रही थी। वह सोच रही थी कि रात जानकी से मन की बात बताकर उसने अच्छा नहीं किया—यदि उसने भैया को यह बता दिया तो···न जाने क्यों उनसे वह यह गुप्त ही रखना चाहती थी···उसका विचार था कि वह इस सूचना से प्रसन्न न होंगे—दिन-रात उनकी दृष्टि उसके शरीर को छेदा करेगी···किन्तु, इसे गुप्त रखना भी तो सम्भव न था। और फिर कब तक···?

डाक्टर द्वारकादास नाश्ता कर रहे थे और तरुणा उनके सामने बैठी सूरज को दूध ठंडा करके पिला रही थी। सहसा डाक्टर द्वारकादास ने चाय का प्याला उठाते हुए पूछा—

"जानकी कहाँ है ?"

"पूजा कर रही हैं।"

"कभी-कभी तुम भी उसका साथ दे दिया करो।"

"जी।" वह उनकी बात न समझते हुए चौंककर बोली।

"मेरा अभिप्राय ठाकुरों की पूजा से था—इस युग और आयु में ऐसी बातें ढोंग-सी लगती हैं किन्तु; कभी-कभी पूजा से बड़ी शाँति मिलती है।"

वह चुप रही। घबराहट से उसकी आँखें ऊपर न उठ सकीं। सूरज दूध पीते-पीते बीच में बोला—

"हाँ बाबा ! मैं पूदा कलता हूँ।"

"कब ?"

"लात को दब ममी आलती कलती हैं।" उसने तोतले शब्दों

में उत्तर दिया।

डाक्टर द्वारकादास मुस्करा पड़े और बोले— "तो जा देख ! तेरी ममी पूजा कर चुकीं कि नहीं।"

सूरज दूध बीच में ही छोड़कर बाहर भाग गया। तरुणा डाक्टर द्वारकादास की प्रश्न सूचक दृष्टि का सामना करने के लिये अकेली रह गई। उसकी घबराहट बढ़ गई जिसे छिपाने के लिए वह उनके खाली प्याले में चाय उंडेलने लगी। उसका मन कह रहा था कि वह उससे कुछ कहना चाहते हैं। चाय की केतली उठाते हुए उसके हाथ कुछ कांप रहे थे। डाक्टर द्वारकादास उसके मन की दशा का अनुमान लगाते हुए धीरे-से बोले—

"बच्चे भी घर की रौनक हैं···"

'"जी !"

'जब से इसे लाये हैं तुम्हारी भाभी कातो जीवन ही बदल गया है"

"और आपका ?" तरुणा के मुंह से अनायास ही निकल गया, वह स्वयं आश्चर्य में थी कि उसने उन पर ही यह प्रश्न कैसे कर दिया।

"मेरा ? मैं तो तुम सबको सुखी देखकर ही मन बहला लेता हूं। निर्मल हुआ तुम हुई···और फिर कल तुम्हारा भी तो परिवार होगा···यह सब अपना ही तो है···" वह कहते-कहते रुक गये। उन्हें अनुभव हुआ कि तरुणा उनकी बात सुनकर घबरा गई है। क्षण-भर चुप रहकर उन्होंने बात का विषय बदला और बोले, "पुरुष जो हूं—दुनिया का सुख देखकर संतोष आ जाता है···किन्तु; स्त्री तो केवल अपनों को देखकर ही प्रसन्न रहती है—"

अभी वह बात पूरी भी न कर पाये थे कि जानकी सूरज की उंगली थामे वहाँ आ पहुँची। तरुणा के मानों प्राण लौट आये। वह चुपचाप उठी और कमरे में चली गई।

डाक्टर द्वारकादास चाय पीकर चले गये तो जानकी तरुणा के कमरे में आई। वह कमरे की झाड़-पोंछ में लगी हुई थी। कालीन को ठीक करने के लिये ज्योंही उसने ड्रैसिंग टेबुल को दोनों हाथों से एक ओर खिसकाया, जानकी ने लपक कर उसे थाम लिया और बोली—

"यह क्या···इतना बड़ा बोझ तुम धकेल रही हो।"

"तो क्या हुआ ?"

"अरी पगली ! इन दिनों ऐसा नहीं करते···सावधानी आवश्यक है।"

"भाभी ! चिन्ता का कोई कारण नहीं···अभी बड़ा समय है।"

"किन्तु; कोई भूल न कर बैठना···इसका उत्तरदायित्व मेरे ही सिर होगा।"

"तो भाभी ! यूँ करो घर में कोई सयानी स्त्री बुला लो जो हर समय मेरा ध्यान रख सके···इस सम्बन्ध में आप तो स्वयं नासमझ हैं।" तरुणा ने मुस्कराते हुए भाभी को छेड़ा।

"हाँ, अब यह कटाक्ष क्यों न करोगी।" जानकी मुँह बनाते हुए बोली।

"भाभी। यह क्या ? तुम तो रूठ गईं···मैंने तो मजाक किया था।"

"क्या करूँ···फिर तुम्हारे भैया लम्बे-चौड़े भाषण देंगे···और भगवान न करे कहीं भूल से भी कुछ हो गया तो मेरी कुशलता नहीं···

"तो क्या तुमने भैया से···"

"नहीं तो···मैं मूर्ख थोड़ा हूँ···" जानकी यह कहते हुए उठ खड़ी हुई। उसकी घबराहट और उठ कर जाने के ढंग से तरुणा समझ गई कि उसने भैया से यह बात कह दी है। गम्भीर मुद्रा में उससे बोली—

"भाभी ! तुमने यह अच्छा नहीं किया।"

"अरी ! मैं न कहती तो स्वयं जान जाते···डाक्टर जो ठहरे। चाल और सूरत देखकर ही सब कुछ जान जाते हैं।"

"तुमने कह दिया···यह ठीक नहीं था।"

"तरुण ! लाख छिपाया किन्तु पेट फटा जा रहा था। तुम्हीं बताओ इतनी खुशी की बात मैं कब तक छिपा सकती थी···आज बरसों के पश्चात् इस घर में उजाले की किरण उत्पन्न हुई है···उसे भी ढक रखूँ···न बहन ! यह मेरे बस की बात नहीं। तुम्हारे सौगंध देने पर भी बातें मुँह से निकल ही गईं।"

तरुणा चुप हो गई और गहरे सोच में खो गई। उसे यह जानकर दुःख हुआ कि भाभी ने भैया से यह बात कह दी···फिर भी किसी प्रकार की चिन्ता प्रकट न करते हुए उसने पूछा—

"इस सूचना से वह प्रसन्न भी हुए क्या ?"

"अरे ! वह इतने प्रसन्न थे कि क्या कहूँ···उस दिन से भी अधिक जब वह सूरज को अपने घर में लाये थे।"

"न भाभी ! ऐसा न कहो—वह भी अपना बेटा है।"

"है—किन्तु; तरुण ! अपना लहू अपना ही है और पराया-पराया—"

जानकी बाहर चली गई किन्तु उसके अन्त में कहे हुए शब्द बड़ी देर तक तरुणा के मनोमस्तिष्क से टकरा कर गूँजते रहे। वह सोचने लगी क्या विचित्र बात है एक ही लहू के दो रंग—एक को अपना कहा जा रहा है और दूसरे को पराया—उसका मन भर आया और आँखें छलक पड़ीं—उसी के हृदय का टुकड़ा उनके घर का चिराग है और वास्तविकता को न जानते हुए वह उसको अपना रहे···वह नहीं जानते कि इसमें उसका कितना बड़ा बलिदान छिपा है। किन्तु; इससे उसे रत्ती-भर दुःख न था—यदि सूरज वहाँ न आता तो कौन जानता है वह द्वार-द्वार की ठोकरें खाता बिना

आश्रय के कहीं भी अंधकार में खो जाता···निर्मल तो उसे शायद कभी नअ पनाता···।

वह कुछ ऐसे ही विचारों के ताने-बाने बुन रही थी कि किसी आवाज ने उसे चौंका दिया···उसने मुड़कर देखा। पीछे कपड़े का बड़ा-सा भालू हाथ में लिये सूरज खड़ा उसे भालू की आवाज निकाल कर डरा रहा था।

सूरज उसे एकाएक चौंकते हुए देखकर हँसने लगा। तरुणा ने लपक कर उसे गोद में बिठा लिया और बोली—

"बन्दर कहीं का—आँटी को डराने आया था क्या ?"

"हाँ—मैंने ममी को भी दलाया—बाबा भी दले और अब तुम—"

"सबको डरा दिया ? तब तो तू बड़ा बहादुर है।"

"हाँ—आंती ! अब नगीना को दलाऊँगा—" यह कहकर वह तरुणा की गोद से निकलकर बाहर जाने लगा।

"अरे ! ठहर तो—अच्छा बता तुम्हें मैं अच्छी लगती हूँ कि ममी ?"

"ममी।"

सूरज के मुँह से दूसरी बार यही बात सुनकर न जाने क्यों उसके मन को धक्का-सा लगा और एक अज्ञात पीड़ा-सी उसके शरीर में दौड़ गई। उसने मुन्ने को छोड़ दिया और शून्य में खो गई। उसकी आँखों में से अनायास आँसू गालों पर ढुलक आये। सूरज एकाएक उसमें यह परिवर्तन देखकर सहम गया और दोनों हाथों से उसके गालों को छूते हुए बोला—

"तुम लूथ गईं···तुम भी अत्थी लगती हो, ममी भी अत्थी लगती हैं।"

तरुणा ने मुन्ने को फिर गोद में उठा लिया और भींच कर प्यार करने लगी।

समय बीतता गया और धीरे-धीरे तरुणा के शरीर में एक परिवर्तन आता गया। उसके पाँव बोझल हो गये, अधखुली आँखें थकी-थकी अलसाई-सी रहने लगीं, शरीर की नसें खिच गईं और एक हल्की-हल्की पीड़ा ने घर कर लिया। वह अपने शरीर में एक नव-जीवन को अनुभव कर रही थी।

उसे एक बार पहले भी ऐसा अनुभव हो चुका था किन्तु; दोनों में कितना अन्तर था। पहली बार भय, अपमान और मृत्यु उसके जीवन पर छाया डाले हुए थे किन्तु अब—वह भाग्यवान समझी जाती—वैसे ही एक नन्हा जीवन उसके पेट में पल रहा था—बिल्कुल वैसे ही—वही माता-पिता किन्तु; यह प्रसन्नता और सुख का स्रोत था और वह दुःख और अनादर का।

जो भेद वह डाक्टर द्वारकादास को बताने से हिचकिचाती थी वह स्वयं सबके सामने खुल गया। किसी को कुछ कहा नहीं, सुना नहीं फिर भी आस-पास सब की जबान पर यही वर्णन था। लोग बातें करते और दबी मुस्कान से उसे देखते और संकोच से उसका मुख लाल हो जाता।

तरुणा को घर में और आस-पास हर व्यक्ति प्रसन्न दिखाई देता था किन्तु डाक्टर द्वारकादास के मुख से ऐसी कोई भावना न झलकती थी। तरुणा को केवल उन्हीं का डर था। अचानक कभी वह सामने से उसके बढ़े हुए पेट को निहारते तो वह काँप जाती। उसे यूँ लगता जैसे अब भी वह उसे सन्देहमयी दृष्टि से देखते हों।

एक दिन अचानक उसकी दशा कुछ बिगड़ गई, शरीर पसीना-पसीना हो गया और हृदय डूबने लगा। जानकी घबरा गई और झट डाक्टर द्वारकादास को सूचना भिजवा दी। थोड़ी देर में ही वह आ गये और कुछ दवाई और आदेश देकर चले गये। जाते हुए जानकी को सावधान करते गये और उसके निकट रहने का आदेश दे गये।

जानकी तरुणा को दवाई देकर किसी कार्यवश बाहर चली गई। दवाई के प्याले को हाथ में लिए कुछ देर वह सोचती रही। उसके मन में भाँति-भाँति के विचार उठने लगे। डाक्टर द्वारकादास की शंका-भरी दृष्टि उसके सामने आ गई···कहीं वह इस नवजीवन को भी तो घृणा से नहीं देखते···उसका कलेजा जोर-जोर से धड़कने लगा। उसने दृष्टि घुमाकर आस-पास देखा और दवाई खिड़की के बाहर उंडेल दी और धड़कन को दबाने के लिए हृदय पर हाथ रख-कर लेट गई।

वह लेटी भय और शंका के जाल में छटपटा ही रही थी कि मुन्ना बाहर से खेलता हुआ आया और उसके पास बैठते हुए बोला—

"आंती। ममी कहती थीं तुम बीमाल हो।"

"नहीं तो···तुम्हारी ममी झूठ कहती हैं।"

"हाँ, मैं थमद गया···ममी कहती हैं तुम ताफी देकल बिगाल देती हो···"

"टॉफी खाओगे क्या ?"

"हाँ आंती···ममी छे मत कहना।"

"अच्छा, नहीं कहूँगी मेरी एक बात मानो तब।"

"क्या ?"

"आज रात तुम मेरे साथ सोना।"

"क्यों ?"

"अकेले में डर लगता है।"

"अच्छा ! सोऊँगा—पहले ताफी दो।"

तरुणा ने धीरे-से उठकर अलमारी से कुछ टॉफियाँ निकालकर उसके हाथ में दे दीं और फिर प्यार करते हुए बोली—

"अब सोने आयेगा ?"

"हाँ आंती !" यह कहते हुए वह बाहर जाने के लिए मुड़ा और फिर एकाएक रुककर बोला—"आंती ! तुमाला कोई बेती नहीं ?"

उसके मुँह से यह प्रश्न सुनकर तरुणा क्षण-भर के लिए खड़ी उसे देखती रही और फिर संभलते बोली—

"क्या तू मेरा बेटा नहीं ?"

"हूँ··· पल ममी भी तो अकेली दलती हैं···तुम भी दलती हो···"

"घबड़ा न मुन्ने ! मैं भी एक और बेटा ले आऊँगी।"

"हाँ आंती···फिल तुम मुदे प्याल न कलोगी ?"

"क्यों न करूँगी···पहले तू मेरा बेटा है और फिर दूसरा कोई।"

"तो आंती बेता न लाना बेती ले आना···हम दोनों खेलेंगे।" यह कहकर वह तेजी से बाहर भाग गया।

तरुणा फिर बिस्तर पर आ लेटी और मुन्ने की बात पर विचार करने लगी। बेटा या बेटी। वह क्या चाहती है—उसके मन में एक गुदगुदी-सी होने लगी—सूरज के समय उसने कभी सोचा भी न था—बस एक भय था, लोक-लाज का भय, समाज का डर···लोग उस पर उँगलियाँ उठायेंगे—उसका अपमान करेंगे और उसका बच्चा बिना बाप का बच्चा, बिना किसी आश्रय के दुनियाँ में आयेगा··· ओह···क्या समय था···वह झुंझला उठी।

रात खाने के बाद जब तरुणा अपने कमरे में लौटी तो सूरज को अपने बिस्तर में सोये देखकर प्रसन्नता से झूम उठी···नन्हे ने अपना वचन पूरा किया था। वह उसके साथ लेट गई और स्नेह-पूर्वक छाती से लगाकर उसके नन्हे-नन्हे होंट चूमने लगी।

कोई दस बजे होंगे जब नगीना दूध का गिलास लिए उसके कमरे में आई। तरुणा उस समय एक उपन्यास पढ़ रही थी। मुन्ने की नन्हीं-नहीं बाँहें उसके वक्ष पर थीं। पाँव की आहट सुनकर उसने पुस्तक से दृष्टि हटाकर नगीना को देखा और बोली—

"दूध ? नहीं ! आज जी अच्छा नहीं। आज नहीं पियूँगी।"

"किन्तु—"

"कह जो दिया नहीं पीना—"

नगीना दूध का गिलास लेकर लौटने के लिए मुड़ी ही थी कि जानकी ने प्रवेश किया। तरुणा ने पुस्तक बन्द करके तकिये के नीचे रख दी और मुस्कराकर भाभी की ओर देखने लगी।

"दूध लौटा रही हो क्या ?" जानकी ने आते ही प्रश्न किया।

"हाँ भाभी ! आज सवेरे से ही पेट भरा-भरा है—जी मिचला रहा है।"

"यह तो अब ऐसे ही चलेगा—खाना-पीना छोड़ दोगी तो पछताओगी।"

"मन न चाहे तो कैसे पी लूँ।"

"दवाई समझकर ही सही···न पियोगी तो तुम्हारे भैया से कह दूँगी और वह बल-पूर्वक पिलायेंगे।"

'अच्छा भाभी ! कल सही आज मन···"

"मन-वन कुछ नहीं···रख नगीना ! मेज पर·········मैं स्वयं पिलाऊँगी।"

"भाभी ! यह जबरदस्ती क्यों ?"

"तुम्हारा ध्यान रखना मेरा कर्त्तव्य ही नहीं बल्कि उत्तरदायित्व भी है।"

तरुणा चुप हो गई। जानकी ने सहारा देकर उसे उठाया और दूध का गिलास उसके मुँह से लगा दिया। बड़ी कठिनता से आधा दूध पीकर उसने गिलास भाभी से लेकर मेज पर रख दिया और 'बस' कहकर मुस्कराने लगी। जानकी के गम्भीर मुख पर लालिमा दौड़ गई और वह भी मुस्कराने लगी।

"अच्छा भई ! तुम्हारी इच्छा—" यह कहते हुए वह सोए हुए मुन्ने को उठाने लगी।

"रहने दो भाभी ! सो रहा है।" तरुणा ने विनती भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

"कहीं रात को रोने लगा तो···"

"तो बहला लूँगी—"

"तंग तो न करेगा।"

"इसकी चिन्ता न करो, मेरे पास होगा तो डर भी न लगेगा··· अकेली जो हूँ।"

"और मैं डरती रही तो—"

"वह कैसे ? तुम्हारे पास भैया जो हैं।"

"चल हट।" जानकी ने मुँह बनाते हुए उसकी ओर देखा और बाहर चली गई। तरुणा मुन्ने को थपथपाने लगी। उसके होंट स्वयं ही हिलने लगे और धीमे स्वर में उसने वही लोरी छेड़ दी जो वह कभी आश्रम में उसे गोद में उठाकर गुन-गुनाया करती थी।

ग्यारह

आज सवेरे से ही वर्षा हो रही थी। छाजों मेंह बरस रहा था, बूँदों का तार था कि टूटने में नहीं आता था। देखते ही देखते सर्वत्र जलथल हो गया। घनघोर घटायें अब भी उमड़ती आ रही थीं।

जानकी को बड़ा तेज ज्वर था। डाक्टर द्वारकादास उसे नींद आने का इंजेक्शन देकर उसके पास ही आराम-कुर्सी पर बैठकर किसी पुस्तक का अध्ययन करने लगे। तरुणा पास ही दूसरी कुर्सी पर बैठी स्वेटर बुन रही थी। कमरे में पूर्ण मौन था और बाहर वर्षा ने तूफान मचा रखा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद तरुणा और डाक्टर द्वारकादास सोई हुई जानकी को देख लेते।

सामने दीवार पर लगे क्लाक ने टन-टन दस बजाए। दोनों की दृष्टि एकसाथ क्लाक पर जा टिकी। सुईयाँ समय की डोरी को खींचती भागी जा रही थीं।

"तरुणा ! दस बज गये सो जाओ।" डाक्टर द्वारकादास ने क्लाक की टन-टन बन्द होते ही तरुणा को कहा।

"जी···ऐसी शीघ्रता भी क्या···भाभी का ज्वर···"

"वह तो समय पर ही उतरेगा—नींद की दवाई दे रखी है।"

तरुणा चुप हो गई और बिखरी ऊन संभालने लगी। सहसा डाक्टर द्वारकादास ने पूछा—

"मुन्ना सो गया क्या ?"

"जी···बड़ी देर का ?"

"दूध पी लिया उसने ?"

"जी पिलाकर सुलाया था ?"

"देखो यदि तुम्हें कोई कष्ट हो तो उसे यहाँ दे जाओ।"

"जी नहीं···कोई कष्ट नहीं···वह बड़े आराम से सो रहा है।"

"अच्छा ठीक है।"

तरुणा ने जानकी को ठीक प्रकार कम्बल से ढक दिया और टेबल लैंप जलाकर छत की बत्ती बन्द कर दी। जाते-जाते क्षण-भर रुकी और बोली—

"रात को मेरी आवश्यकता पड़े तो जगा लीजियेगा।"

डाक्टर द्वारकादास ने हाँ में सिर हिला दिया और तरुणा तेजी से बाहर आ गई। अपने कमरे में पहुँचते-पहुँचते बरामदे की बौछार से उसकी साड़ी भीग गई।

कमरे में आते ही उसने मुन्ने को देखा। वह मीठी नींद सोया अति प्यारा लग रहा था। तरुणा ने सस्नेह चूमा और साड़ी के भीगे ए आँचल को निचोड़कर हाथों में फैलाकर सुखाने लगी।

साड़ी सुखाते-सुखाते अचानक उसकी दृष्टि ड्रेसिंग-टेबल पर लगे दर्पण पर पड़ी। एकाएक वह स्वयं को देखकर खड़ी की खड़ी रह गई। आज भी वह काली साड़ी पहने हुए थी···ऐसे ही पीले मुख र बिखरे हुए बालों से अंधेरी वर्षा की रात में वह डाक्टर द्वारका-

दास के पास एक दिन गई थी, कितना भयानक समय था···उस ने झट दर्पण के सामने से अपना मुख हटा लिया और मुन्ने की ओर देखने लगी···यही मुन्ना उस बन्द कली के समान उसके शरीर में फट रहा था—उसका विचार उस कली को फूटने से पूर्व ही नष्ट कर देने का था···कितना बड़ा पाप होता यदि डाक्टर द्वारकादास उस समय उसकी बात मान लेते तो—उसकी आत्मा, कभी उसे क्षमा न करती—उसका अन्त:करण सदा उसे धिक्कारता रहता।

उसने कल्पना में उस नवजीवन का ध्यान किया जो उसके पेट में न ले रहा था—वह स्वयं भी उस नन्हें हृदय की धड़कन सुन सकती थी। उसे नष्ट करने की वह कल्पना भी न कर सकती थी—अब उसे जन्म देने के लिए उसे समाज की स्वीकृति प्राप्त थी। घर भर उसके आगमन के लिए उत्सुक था···वह मुस्कराता हुआ आयेगा और सर्वत्र मुस्कान भर देगा···सब उसे प्यार करेंगे···उसके प्रकाश से घर में उजाला होगा, देश में उजाला होगा और वह दुनिया-भर के सामने उसे सीने से लगाकर कहेगी, "यह मेरा लाल है इसे मैंने जन्म दिया है···मैं इसकी माँ हूँ, यह मेरा है" उसका रोम-रोम एक तरंग से गुदगुदा उठा···उसे यूँ अनुभव हुआ जैसे वह नवजीवन उसके शरीर में हिल रहा हो, हाथ-पाँव मार रहा हो···एक अलौकिक और नूतन हर्ष ने उसे विभोर कर दिया, यह कैसा अनुभव है यही वह आशा है जिस पर ब्रह्मांड चलता है, जीवन पलता है··· इसी पर उत्पत्ति का आधार है। पुरुष संसार की कड़ी से कड़ी उलझन सुलझा सकता है, चाँद तारों तक पहुँच सकता है, समुद्र की थाह ला सकता है—इससे उसे प्रसन्नता मिलती है, किन्तु; यह प्रसन्नता उस दैवीय प्रसन्नता के एक कण के समान भी नहीं जो नवजीवन का संचार करते हुए माँ के हृदय में उत्पन्न होती है जिसमें आशा ही आशा है।

कल्पना की तरंगों पर तैरती वह [illegible] मुन्ने के साथ लिपट कर सो

गई। रात आधी से अधिक बीती होगी कि किवाड़ पर निरंतर खट-खट से उसकी नींद खुल गई। उसने आँखें खोलकर इधर-उधर देखा। कमरे में पूर्ण अंधेरा था। उसने सोचा शायद उसने कोई स्वप्न देखा है। इतने में किवाड़ पर फिर धमाका हुआ। वह साँस रोके विस्तर से नीचे उतरी और काँपते हाथों से बिजली जला दी।

उजाला होते ही बाहर से डाक्टर द्वारकादास की आवाज आई जो उसे पुकार रहे थे। तरुणा को एकाएक जानकी का ध्यान आया। वह सोने से पहले उसे तीव्र ज्वर में छोड़ आई थी। उसने झट किवाड़ खोल दिया और भैया को देखते ही पूछा—

"भाभी तो ठीक है ना!"

"हाँ चिन्ता की कोई बात नहीं।" डाक्टर द्वारकादास भीतर आ गये।

तरुणा शीघ्रता से घबराहट के कारण आँचल भी न संभाल सकी थी। अचानक डाक्टर द्वारकादास की उपस्थिति का भान करके वह संभली और सिर को ढकते हुए बोली—

"सब ठीक है क्या?"

"हाँ। मुन्ना सो रहा है क्या?" डाक्टर द्वारकादास ने मुन्ने की ओर देखते हुए कहा।

"जी!"

"उसे लेने आया था।"

"क्यों?" वह घबराकर बोली।

"तुम्हारी भाभी ने मँगवाया है—कोई डरावना सपना शायद देखा है। बड़ी देर से बुड़बुड़ा रही है—मेरे मुन्ने को ले आओ—"

तरुणा को एकाएक कुछ समझ में न आया—मुन्ने को इस समय ले जाने की क्या आवश्यकता थी—वह यह सोच रही थी कि डाक्टर द्वारकादास ने मुन्ने को उठाने के लिए हाथ बढ़ाये। तरुणा पास आई और स्वयं उसे उठाते हुए बोली—"ठहरिये! मैं छोड़

आती हूँ।"

डाक्टर द्वारकादास इस समय उसे कष्ट न देना चाहते थे किन्तु कुछ कह न सके। उनके कमरे में आकर तरुणा ने मुन्ने को भाभी के पास लिटा दिया। वह उखड़ी-उखड़ी दृष्टि से छत की ओर देख रही थी। मुन्ने को पास देखकर उसने उसे छाती से चिपका लिया और फिर वैसे ही शून्य में देखने लगी। तरुणा उसके पास बैठ गई और धीरे-से बोली···"क्या हुआ भाभी!"

जानकी ने कोई उत्तर न दिया और छत की ओर ही देखती रही। तरुणा ने उसके माथे को छूआ। शरीर ठंडा हो रहा था। उसने चिन्ता भरी दृष्टि से भैया की ओर देखा।

"घबराओ नहीं···सब ठीक है···मैंने दवाई दे दी है।"

"तो क्या···"

"थोड़ा डर गई है···ठीक हो जायेगी।"

जानकी अब भी चुप थी। तरुणा उसे देखती हुई उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे बाहर चली गई।

तरुणा के चले जाने के बाद डाक्टर द्वारकादास जानकी के पास आ बैठे। जानकी की आँखों में आँसू आ गये थे। उन्होंने जेब से रुमाल निकाला और उसके आँसू पोंछते हुए बोले—

"अब जी कैसा है?"

जानकी ने कोई उत्तर न दिया केवल, हाँ में सिर हिला दिया। "अब तो मुन्ना आ गया···सो जाओ···" डाक्टर द्वारकादास ने मुन्ने के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"नहीं-नहीं···मैं इसे कभी अलग न होने दूँगी···" वह टूटे शब्दों में बुड़बुड़ाई और फिर से सुरज को बाँहों में दबोच लिया।

"कौन कहता है तुम इसे अलग करो?" डाक्टर द्वारकादास ने उसे सांत्वना देते हुए कहा।

"तरुणा इसे छीन न ले—"

"नहीं छीनती···वह मुन्ने को क्या करेगी···तुमने स्वयं ही तो इसे उसके पास सोने को भेजा था···वह स्वय इसे तुम्हारे पास छोड़ने यहाँ आई थी और तुमने उससे बात भी न की, क्या सोचती होगी वह···"

"हाँ—यही सोचती हूँ···वह क्या सोचती होगी—" एकाएक उसका मस्तिष्क साफ हो गया और वह रोने लगी। डाक्टर द्वारका-दास उसके और समीप हो गये और बोले—

"जनक ! मन की बात न कहोगी ?"

"क्या ?"

"क्या सपना देखा था तुमने जो तुम चीख उठीं।"

"ये ही तो मैं सोचती हूँ यह कैसा सपना था।"

"क्या देखा तुमने ?"

"आपको···तरुण को···क्या तरुणा सूरज को छीन लेगी।"

"नहीं, वह ऐसा क्यों करने लगी—तुम्हीं ने तो कहा था वह माँ बनने वाली है—उसका तो अपना बच्चा होने वाला है।"

"तो मैंने ऐसा क्यों देखा ?"

"क्या देखा तुमने ?"

"एक गाँव है और उसके बाहर हमारा छोटा-सा मकान—आप डाक्टर हैं और मैं नर्स बनी आपकी सहायता करती हूँ···बड़ी भया-नक रात है और वर्षा हो रही है···आप डिस्पेन्सरी को बन्द कर रहे हैं और मैं अपने बच्चे को सुला रही हूँ···एकाएक किवाड़ पर धमाका होता है और एक युवती काली साड़ी पहने, उदास थकी-सी भीतर आती है···आप उसे सहारा देकर बिठा देते हैं जब वह बताती है कि वह कुंआरी है और माँ बनने वाली है तो आप फिर किवाड़ खोलकर उसे बाहर चले जाने का आदेश देते हैं···मुझे वह लड़की बड़ी भोली-भाली दिखाई देती है बिल्कुल हमारी तरुण जैसी···वही नयन-नक्श- वही रूप-रंग···"

"जानकी !" डाक्टर द्वारकादास बोले, "तुम बहुत थक गई हो ...सो जाओ..."

"पूरा सपना न सुनियेगा ?" जानकी ने उन्हें बैठे रहने का आग्रह किया। डाक्टर द्वारकादास अनमने से बैठ गये। घबराहट से उनका शरीर पसीना-पसीना हुआ जा रहा था। कुछ क्षण चुप रहने के पश्चात् उसने बात चालू रखी—

"मैंने उसे रोक लिया और अपने साथ उसकी चारपाई लगवा दी। वह लेट गई और मेरे बच्चे को लोरी देकर सुलाने लगी... मेरी भी आँख लग गई...और जब मैं जागी तो जानते हैं मैंने क्या देखा ?"

डाक्टर द्वारकादास हाथ पर सिर टिकाये आँखें बन्द किये जानकी की बातें सुन रहे थे। उन्होंने मौन दृष्टि उठाकर पत्नी की ओर देखा।

"मैंने देखा वह अपने बिस्तर पर नहीं—और मेरा बच्चा" यह कहते-कहते उसकी जबान रुक गई। डाक्टर द्वारकादास ने पास रखे गुलूकोज के दो चम्मच उसके मुँह में डाल दिये। जानकी ने बात पूरी कर दी, "वह मरा पड़ा था...उसने अपने हाथों रात उसका गला दबा दिया था।"

डाक्टर द्वारकादास को और सुनने की सहन शक्ति न रही। वह क्रोध में एकाएक चिल्लाये—"बकवास बंद करो।" और उसके बिस्तर से उठ खड़े हुए। अचानक इसी समय बाहर खिड़की से कुछ गिरने का धमाका हुआ और साथ ही एक पीड़ा भरी चीख वातावरण में गूँजी।

जानकी काँप कर उठ खड़ी हुई। डाक्टर द्वारकादास ने झट खिड़की खोलकर बाहर देखा। नीचे फ़र्श पर तरुणा बेसुध गिरी पड़ी थी। डाक्टर द्वारकादास घबरा गये और दूसरे क्षण खिड़की छलांग [illegible]

उन्होंने तरुणा को बाँहों में उठाया और उसके कमरे में ले जाकर बिस्तर पर लिटा दिया। वह अभी बेसुध थी। उसके गिरने का कारण उनकी समझ में आ गया। सूरज को भाभी के पास लिटाकर वह अपने कमरे में लौटी न थी बल्कि मुंडेर का सहारा लेकर खिड़की से लगी उनकी बातें सुनती रही थी। जानकी इस बात का अनुमान भी न लगा सकती थी कि उसके सपने से उसके जीवन का कितना बड़ा सम्बन्ध था।

गर्भ की दशा में उसका यूँ गिर जाना भय से खाली न था। डाक्टर द्वारकादास ने उसे सावधानी से बिस्तर पर लिटाकर इंजेक्शन लगा दिया। उसके हृदय की तीव्र धड़कन उन्हें निरंतर सुनाई दे रही थी।

उसी समय जानकी किवाड़ का सहारा लिए बड़ी कठिनता से पाँव उठाती भीतर आई। डाक्टर द्वारकादास ने उसका हाथ पकड़ कर कुर्सी पर बिठा दिया और बोले—"तुम क्यों चली आईं?"

"क्या हुआ तरुण को?" जानकी ने उसके प्रश्न का उत्तर न देते हुए स्वयं पूछा।

"गिर गई।"

"कैसे?"

"तुम्हारा सपना सुनकर—"

"क्या सब सुन लिया उसने?"

"शायद..."

"अब कैसी है?"

"बेसुध पड़ी है।"

"कोई डर?"

"ऊँ हूँ...किन्तु; ऐसी दशा में गिर जाना अच्छा नहीं।"

जानकी कुर्सी छोड़कर तरुणा के बिस्तर पर बैठ गई। डाक्टर द्वारकादास ने रुई पर कोई दवाई उंडेल कर उसके नाक पर रख

दी। थोड़ी देर बाद तरुणा ने आंखें खोल दीं और इधर-उधर देखने लगी।

"कैसी हो अब ?" डाक्टर द्वारकादास ने मुस्कराते हुए पूछा। तरुणा ने उत्तर न दिया और एकटक पहले डाक्टर द्वारकादास को और फिर जानकी को देखने लगी। अचानक उसके सांस की गति तीव्र हो गई और फिर बेसुध हो गई। जानकी घबरा कर उस पर झुकी किन्तु; डाक्टर द्वारकादास ने उसे बाहर जाने का संकेत करते हुए कहा—"घबराओ नहीं—सब ठीक है···फ़ट पड़ गया है समय पर ही जायेगा।"

जानकी बाहर चली गई, डाक्टर द्वारकादास ने हवा आने के लिए उसके कमरे की खिड़की खोल दी और नगीना को जगाकर उसे वहीं रहने का आदेश देकर अपने कमरे में लौट गये।

दो दिन के आराम के बाद डाक्टर द्वारकादास तरुणा को निरीक्षण के लिए अपनी डिस्पैन्सरी में लाये। जानकी भी उसके साथ थी। तरुणा की समझ में कुछ भी न आ रहा था। जानकी का सपना सुनकर उसे इतना आघात पहुँचा कि वह खुलकर बात करने से भी डरती थी। उसकी दशा कुछ विचित्र सी ही थी। हर समय सहमी सी खोई-खोई सी रहती। उसे स्वयं से भय सा लगने लगा। उसने किसी के सामने सूरज को प्यार करना छोड़ दिया और यदि वह आंती-आंती कहता उससे लिपटने लगता तो वह उसे झपट कर अलग कर देती। डाक्टर द्वारकादास और जानकी उसका यह परिवर्तन देखकर दुःखी होते।

डिस्पैन्सरी में उसके निरीक्षण के लिए डाक्टर द्वारकादास ने एक और विशेषज्ञ को बुलवा रखा था। वह स्वयं जानकी के साथ बाहर ही ठहरे और निरीक्षण-गृह में तरुणा अकेली ही रह गई। नये डाक्टर ने तरुणा को चारपाई पर लेटने का आदेश दिया और कानों पर स्टैथोस्कोप लगाकर उसका निरीक्षण करने लगा।

स्टैथोस्कोप उसके पेट से हटाकर डाक्टर ने मुस्कराते हुए देखा और बोला—

"शायद पहला बच्चा है ?"

"जी—"वह सिर से पाँव तक काँप गई।

"मेरा अभिप्राय है पहली बार ही इतनी घबराहट होती है··· डरो नहीं, सब ठीक है।"

तरुणा का शरीर पसीने से भीग गया और शायद वह डाक्टर का प्रश्न सुनकर बेसुध होकर गिर जाती यदि उसी समय हर्दा हटा कर जानकी भीतर न आ जाती।

जानकी के कंधे का सहारा लेकर उसने बड़े धीमे स्वर में पूछा—

"भाभी ! यह सब क्या है ?"

"तुम्हें उन्होंने कुछ कहा नहीं !"

"नहीं।"

"तुम्हारा ऐक्सरे (X-Ray) लेना है।"

"क्यों ?"

"देखिये अब थोड़ा चुप रहिये मैं इनका ऐक्सरे ले लूँ।" डाक्टर ने ऐक्सरे का कैमरा तरुणा के पास लाते हुए कहा।

"आप लेट जाइये।"

क्षण-भर वह मौन बैठी जानकी को देखती रही और फिर उसके संकेत पर वह लेट गई। डाक्टर ने कैमरा उसके पेट पर ठीक करते हुए उसे साँस रोके रखने को कहा और ऐक्सरे का बटन दबा दिया।

ऐक्सरे के बाद तरुणा और जानकी घर लौट आईं। दोनों एक दूसरे से कुछ खिची-खिची थीं। दोनों के मन में चोर था। जानकी के सपने ने तरुणा की यह दशा कर दी थी और वह तरुणा की चिन्ता को भाँप चुकी थी। उसके पास बैठते हुए जानकी ने बात छेड़ी—

"तुम गिर गईं··यह अच्छा नहीं हुआ।"

"तो मुन्ने को आधी रात अपने पास बुला लेना क्या अच्छा

था ?"

"तरुण ! जानकी ने उसे दोनों कंधों से धीरे-से पकड़ते हुए कहा, "क्या रूठ गई हो ?"

"नहीं।"

"सच कहती हूँ न जाने क्यों डर गई थी, नहीं तो मुन्ने को कभी तुमसे अलग न करती।"

"भाभी ! सपने कभी सच भी होते हैं ?" तरुणा गम्भीर हो गई।

"उलटे होते हैं···अब छोड़ो इस बात को···चलो आराम करो, तुम बहुत थक गई हो।"

तरुणा चुप हो गई और अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गई। जानकी उसके पास ही कुर्सी पर बैठ गई। वह आज उसे अकेला न छोड़ना चाहती थी। बहुत देर तक वह मौन बैठी रही और फिर तरुणा ने बात आरम्भ की—

"भाभी ! एक बात पूछूँ !"

"क्या ?"

"भैया ने तुमसे मेरे सम्बन्ध में क्या कहा।"

"बहुत कुछ···" जानकी ने असावधानी से उत्तर दिया।

"क्या ?" तरुणा ने डरते-डरते फिर पूछा।

"तुम्हारी देवरानी बहुत अच्छी है, सुशील है, शिक्षित है, गम्भीर है, किन्तु! कभी-कभी···" कहते हुए जानकी रुक गई और मुस्करा कर उसकी ओर देखने लगी।

"क्या ?"

"कह दूँ ?" जानकी की मुस्कराहट में चंचलता थी।

"हाँ।"

"कहते थे कभी-कभी तनिक-सी बात पर बिगड़ जाती है···" यह कहकर जानकी हँसने लगी। तरुणा के मन से एक बोझ-सा उतर

गया। अपने माथे पर आया हुआ पसीना पोंछकर वह चुप हो गई।

"एक बात अवश्य है," जानकी ने कुछ देर रुककर फिर कहा।

"क्या ?"

"जितना ध्यान वह तुम्हारा रखते हैं, तुम स्वयं नहीं रख सकतीं।"

"कुछ कहा उन्होंने ?"

"तनिक-सा पाँव क्या फिसला ऐक्सरे करवा डाला।"

"ऐक्सरे में क्या देखा ?"

"मैं क्या जानूं ? रिजल्ट (Result) आयेगा तो पता चल जायेगा।"

वह चुप हो गई और तकिये के नीचे से एक पुस्तक निकालकर पढ़ने लगी। इतने में सूरज बाहर से खेलता हुआ आया और जानकी के गले से लटक गया। तरुणा ने उसे देखने के लिए आँख न उठाई और पुस्तक पढ़ती रही। सूरज ने जानकी के गले से लटकते हुए पूछा—

"आंती छो गई…"

"हाँ मुन्ने ! जा खेल, वह जाग न जाए।"

तरुणा ने सुना और चुपचाप पड़ी रही जैसे सचमुच सो रही हो। ममता और विवशता…उसकी आँखों में आँसू ढलक आए। वह चुपचाप लेटी रही और यूँही सोचते हुए सो गई।

बारह

"तरुणा कहाँ है ?" डाक्टर द्वारकादास ने घर आते ही पूछा।

"अपने कमरे में।"

"क्या कर रही है ?"

"शायद कपड़ों को इस्तरी लगा रही है।"

"कई बार कहा ऐसे काम नगीना से करवा लिया करो।"

"कोई बोझ वाला काम तो है नहीं, फिर आप क्यों घबराते हैं?"

"सावधान तो रहना ही चाहिए..."

"आप डाक्टर सही किन्तु; स्त्रियों से अधिक इस विषय में न समझ सकेंगे।"

"नहीं जनक ! ऐसी बात नहीं यह केस ही ऐसा है।"

"मैं समझी नहीं।"

"तरुणा को बहुत आराम की आवश्यकता है।"

"कुछ बात है..."

"हाँ वह ऐक्सरे की रिपोर्ट आ गई है।"

"क्या ?" जानकी ने चिन्ता प्रगट करते हुए पूछा।

"उस दिन गिरने से बच्चा पेट में उलट गया है।"

"तो..."

"सावधानी...और कुछ नहीं।"

"तब तो केस वास्तव में टेढ़ा है।"

"इसलिए तो बार-बार सावधान रहने के लिए कहता हूँ...और हाँ देखो ! उसे यह सब कहने की कोई आवश्यकता नहीं।"

जानकी 'अच्छा' कहकर तरुणा के कमरे में चली गई और उसके हाथ से इस्तरी लेकर उसे आराम कुर्सी पर बिठा दिया। तरुणा पहले ही पसीना-पसीना हो रही थी—उठते हुए उसका सिर घूमने लगा, जी मिचलाने लगा और वह पेट पर हाथ रखकर हाय करके बैठ गई। जानकी भागी-भागी कोई दवाई लेने के लिए डाक्टर द्वारकादास के कमरे में आई। उन्होंने उसे एक शीशी से दो गोलियाँ निकालकर पानी से खिलाने को कहा।

"आप स्वयं दे दें तो शायद खा ले...मेरे कहने से तो वह कुछ

न लेगी।"

"क्यों ?"

"न जाने क्यों···जब से गिरी है मुझसे कुछ खिची-खिची रहने
लगी है।"

"तुमने कुछ कहा तो नहीं ?"

"मैंने तो कुछ नहीं कहा, उस दिन स्वयं ही मुझसे पूछने लगी।"

"क्या ?"

"कि आपने मुझे उसके सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा ?"

"तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा कि वह कहते हैं तुम बड़ी अच्छी हो···सुशील हो···
गम्भीर हो···किन्तु कभी-कभी तनिक-सी बात पर बिगड़ जाती हो।"

डाक्टर द्वारकादास दबे होठों मुस्कराने लगे और पत्नी के साथ
तरुणा के कमरे की ओर चल दिए।

तरुणा का जी अब अच्छा था और वह आराम कुर्सी पर बैठी
स्वेटर बुन रही थी। भैया को सामने देखकर उठने का प्रयत्न करने
लगी।

"बैठो-बैठो···कैसी हो अब ?" डाक्टर द्वारकादास ने उसे हाथ
से बैठने का संकेत करते हुए कहा।

"ठीक हूँ।" वह लजाते हुए सिर पर आँचल ठीक करने लगी।
आँचल संभालते हुए स्वेटर नीचे गिर गया। डाक्टर द्वारकादास ने
तुरन्त झुककर उसे उठा लिया और मेज पर रखते हुए बोले—

"निर्मल की स्वेटर है ?"

"जी···"

"मैं समझा मेरे लिए बुन रही हो।" वह मुस्कराते हुए बोले।

तरुणा के पीले मुख पर हल्की-सी लालिमा दौड़ गई। धीरे-से
बोली, "आप ही ले लीजिए···मैं उनके लिए दूसरा बुन लूँगी।"

"नहीं···यह तो उसी के नाम का है···हमारे लिए और बुन

दिना," डाक्टर द्वारकादास ने मुस्कराते हुए कहा और मेज़ पर रखा पानी का गिलास उसकी ओर बढ़ाते हुए गोलियाँ उसकी हथेली पर रख दीं। तरुणा प्रश्न-सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

"हाँ-हाँ...दवाई है पानी के साथ खालो...जी का मिचलाना ठीक हो जाएगा।"

"नहीं...ऐसी कोई बात तो नहीं।"

"तुम खा तो लो...जानकी के हाथ भिजवा देता किन्तु; सोचा स्वयं दे आऊँ।"

वह चुप रही और नीचे देखने लगी। थोड़ी देर के मौन के बाद वह फिर बोले—"जानकी के सपने से तुम व्यर्थ चिन्तित हो गईं...किन्तु ऐसा मत सोचो कि वह तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ जानती है—यह भ्रम अपने मन से निकाल दो और अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो।"

वह फिर भी चुप रही। डाक्टर द्वारकादास ने फिर उसे दवाई खाने को कहा। न जाने क्यों उसका मन दवाई खाने को न चाह रहा था। फिर भी वह डाक्टर द्वारकादास के सामने इन्कार न कर सकी और उसने उनके हाथ से पानी का गिलास लेकर दवाई खा ली। डा० द्वारकादास मुस्कराते हुए बाहर चले गए और वह स्वेटर बुनने लगी।

अब दिन-रात तरुणा का विशेष ध्यान रखा जाने लगा। उसे लेटे रहने का आदेश दिया गया और दिन में दो-चार बार दवाई दी जाने लगी। वह कहीं आ-जा न सकती थी। खाने पर नियन्त्रण हो गया। उसे वही कुछ दिया जाने लगा जो डाक्टर द्वारकादास उचित समझते।

इन बातों का तरुणा के मन पर बुरा प्रभाव पड़ा। उसके मस्तिष्क में भाँति-भाँति के विचार आने लगे। वह यूँ अनुभव करने लगी जैसे वह इस घर में कैद कर दी गई हो। यहाँ वही कुछ होता

है जो भैया भाभी चाहते···वह तो न किसी से कुछ कह सकती न सुन सकती। पहले वह भाभी से मन की बात कह लेती थी किन्तु; उस घटना के बाद वह उससे कुछ कहने का साहस न कर सकती। अब उसे घर में सब अपने वैरी दिखाई देते थे। प्रतिदिन उसका स्वभाव चिड़चिड़ा होता जा रहा था। वह मन ही मन अकेली बैठी कुढ़ती रहती।

दिन पूरे होते जा रहे थे। वह अपने शरीर में बढ़ती हुई हल-चल अनुभव करने लगी थी। भाभी जब भी आती यही कहती—"देखना ! लड़का ही होगा···मेरा कहना सच ही निकलेगा।"

उसके बार-बार लड़के की अग्रु-सूचना देने पर एक-दिन तरुणा ने पूछा—

"भाभी ! तुमने कैसे जाना लड़का होगा ?"

"अनुमान···और मेरा अनुमान झूठा नहीं हो सकता।"

"कैसे लगाया यह अनुमान ?"

'तुम्हारी सूरत देखकर।"

"मेरे मुख पर लिखा है क्या।"

"हूँ···यह कोमल और साफ गाल···यही चिन्ह हैं लड़का होने का···यदि मुख पर छाइयाँ पड़ जायें तो लड़की होती है।"

तरुणा हँसने लगी। जब भाभी चली गई तो कल्पना में वह अपने होने वाले बच्चे की छांव उतारने लगी···निर्मल से मिलती-जुलती, ऐसे ही जैसा उसका सूरज था।

अब उसका शरीर बेढब-सा होता जा रहा था इसलिए अधिक समय वह अपने कमरे में ही बिताती। वह डाक्टर भैया के सामने आने से बहुत हिचकती और जितना समय वह घर में रहते वह अपने शरीर को लपेटे कोई उपन्यास पढ़ती रहती। खाना भी वह अब अपने कमरे में ही खाती।

एक समय अचानक उसकी दशा बिगड़ गई। तुरन्त डाक्टर

द्वारकादास को टेलीफ़ून पर बुलवाया गया। उन्होंने आते ही निरीक्षण किया और एक इंजैक्शन लगा दिया। थोड़ी देर बाद उसकी दशा संभल गई और वह उठकर बैठने की चेष्टा करने लगी। डाक्टर द्वारकादास ने उसे हाथ से संकेत से लेटे रहने को कहा। जानकी उस समय कमरे में न थी। तरुणा शरीर पर चादर ढांपकर लेट गई। डाक्टर द्वारकादास दवाइयों का बक्स उठाकर बाहर जाने लगे किन्तु; सहसा कुछ सोचकर रुक गए और बोले—

"तरुण !"

"जी ! उसने सिर पर आँचल ठीक करते हुए कहा।

"दवाई से अधिक तुम्हें सावधानी की आवश्यकता है।"

"जितनी सावधानी मैं कर सकती हूँ वह तो कर रही हूँ।"

"शरीर के साथ तुम्हें मानसिक शक्ति भी चाहिए।"

"जी !"

"मेरा अभिप्राय है तुम सदा प्रसन्न रहा करो···मस्तिष्क में यूँ ही उल्टे सीधे विचार न बसा लिया करो।"

वह चुप रही और सहमी हुई दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। डाक्टर द्वारकादास क्षण भर खड़े रहे और फिर बोले—

"मेरा अनुमान है तुमने कुछ ऐसे विचार मस्तिष्क में भर लिए हैं और तुम समझती हो मेरा अनुमान झूठ नहीं हो सकता।"

डाक्टर द्वारकादास यह कहकर चले गये किन्तु; तरुणा के मन को शांति देने के स्थान पर और अशांत कर गए। उसके मस्तिष्क में नये-नये विचार उत्पन्न होने लगे···उसे यूँ लगा जैसे उनका अभिप्राय हर बार ऐसी बातें करने से उसके घावों को हरा रखना है··· वह उसके शरीर में पल रहे जीवन को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं···उनके निकट अब भी वह बहू के आदर की पात्र नहीं···न जाने ऐसे विचार उसके मस्तिष्क में क्यों उत्पन्न हुए परन्तु एक विचार ने ऐसे विचारों का तांता सा लगा दिया। वास्तव में मानव प्रकृति ही

ऐसा है कोई सोच एक बार उत्पन्न होने पर बहाव का रूप धारण कर लेती है।

मेज़ पर दवाइयों की छोटी-बड़ी शीशियों की पंक्ति-सी लग रही थी जैसे नन्ही मुन्नी गुड़ियों की पलटन हो। अचानक सोचते-सोचते तरुणा की दृष्टि इन शीशियों पर पड़ी और फिर एक शीशी पर जाकर रुक गई। उस पर लगे 'poison' के लाल लेबल को देखकर वह चौंक गई, इस शीशी को वह कई दिन से देख रही थी किन्तु; उस पर लिखे शब्द ने उसे आज ही आकर्षित किया था। उसने काँपते हुए हाथ से उस शीशी को उठा लिया और उसमें रखी गोलियों को देखने लगी। लाल रंग की छोटी-छोटी विष की गोलियाँ ...वह सोचने लगी यह गोलियाँ शायद डाक्टर द्वारकादास ने उसके पेट में ही उसके बच्चे को मारने के लिए दवाई के रूप में रखी हैं...उसे इन गोलियों में मृत्यु की झलक दिखाई देने लगी। उसने चुपके से शीशी को तकिये के नीचे छिपा लिया।

रात को द्वारकादास उसके कमरे में आये। उसकी कुशलता पूछने के बाद उन्होंने सरसरी दृष्टि दवाइयों की मेज पर डाली और लाल गोलियों वाली शीशी को न देखकर उससे पूछा कि शायद उसने कहीं और रख दी हो। तरुणा ने आश्चर्य प्रकट करते हुए उत्तर दिया—

"नहीं · मैंने नहीं रखी।"

डाक्टर द्वारकादास ने नगीना को बुलाकर पूछा किन्तु; उसे ज्ञान होता तो बताती। वह चिन्ता में पड़ गए और इधर-उधर ढूँढने लगे। बहुत खोज के बाद भी जब वह शीशी न मिली तो वह निराश होकर अपने कमरे में चले गये और जाते हुए जानकी से कह गये—

"देखना! कहीं मुन्ने के हाथ न लग जाये··बड़ी विषैली गोलियाँ हैं।"

तरुणा ने सुना तो उसका भ्रम दृढ़ हो गया और उसने निश्चय कर लिया कि वह ऐसी कोई दवाई न खायेगी।"

दूसरे दिन डाक्टर द्वारकादास वही शीशी फिर ले आये और मेज पर रखते हुए तरुणा से बोले—

"ध्यान रखना यह भी कहीं खो न जाये !'

तरुणा की शंका विश्वास में परिवर्तित हो रही थी। जब वह शीशी रखकर जाने लगे तो धीरे से बोली—

"इसे लेते जाइये···यह गोलियाँ मैं न खाऊँगी।"

"क्यों ?" डाक्टर द्वारकादास ने आश्चर्य से देखते पूछा।

"आप ही ने तो कहा था यह विष है।"

डाक्टर द्वारकादास हँस पड़े और बोले—

"कोई विष भी अमृत का गुण रखते हैं···और फिर तुम्हें इससे क्या···तुम तो दवाई के रूप में ले रही हो।"

तरुणा ने कोई उत्तर न दिया किन्तु उसका मुख बता रहा था कि उसे उनकी दी हुई दवाई में विश्वास नहीं था। डाक्टर द्वारकादास कुछ क्षण खड़े उसे देखते रहे और फिर गम्भीर हो गये। दवाई की शीशी उन्होंने उठाकर जेब में रखली और हाथ फैलाकर कठोर स्वर में बोले।

"लाओ।"

"क्या ?" तरुणा चौंक कर बोली।

"कल वाली शीशी···किसी और के काम आयेगी।"

तरुणा को यूं लगा जैसे वह सब कुछ जानते हैं। वह उनसे इन्कार का कोई शब्द भी न कह सकी और तकिये के नीचे से शीशी निकाल कर उन्हें दे दी। डाक्टर द्वारकादास ने वह शीशी भी जेब में रखली और लम्बे-लम्बे डग भरते कमरे से बाहर चले गये। उनके मुख पर इस समय एक विशेष प्रकार का क्रोध था जिसे देखकर तरुणा डर गई।

न जाने क्यों वह जितना मन को समझाने का प्रयत्न करती उतना ही वह शंकामय होता जाता—उसे सभी अपने शत्रु जान पड़ते। मुन्ने को उसने प्यार करना छोड़ दिया और भाभी से वह बिना काम कोई बात न करती। उसे कोई दवाई दी जाती तो आँख बचाकर उसे खिड़की से बाहर उंडेल देती।

डाक्टर द्वारकादास भी उससे बिगड़े-बिगड़े रहते। भाभी स्वयं भी उससे कुछ कहने से डरती। किन्तु दोनों हर समय उसके लिये चिंतित रहते। उसका साधारण सा हठ उसके प्राणों को भय में डाल सकता था। वह स्पष्ट रूप से उससे कुछ न बता सकते किन्तु; सोचते रहते।

एक दिन सामान वाले कमरे में कुछ टटोलते हुए उसने भारी संदूक को उठाकर एक ओर करना चाहा। अभी संदूक को उसने उठाया ही था कि फर्श पर गिर पड़ी। नगीना ने आवाज सुनी तो भागती हुई आई। जानकी भी आँख झपकते ही वहाँ पहुँच गई और दोनों ने मिलकर उसे पलंग पर लिटा दिया। गिरते ही वह बेसुध हो गई थी। नगीना ने झट उसकी हथेलियाँ और तलवे मलने आरंभ कर दिये। और जानकी ने सुध में लाने वाली दवाई सुँघा दी। थोड़ी देर बाद उसने आँखें खोल दीं।

नगीना उसे होश में आते देखकर बाहर चली गई परन्तु, जानकी उसके सिरहाने बैठी धीरे-धीरे उसका सिर सहलाने लगी। तरुणा आँख खोले छत की ओर देख रही थी। घबराहट से उसका शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। जानकी ने धीरे से उसकी टेढ़ी टाँग को सीधा किया और बड़े नम्र स्वर में बोली—

"तरुणा!"

तरुणा एकाएक चौंक गई और छत से दृष्टि हटाकर भाभी की ओर देखने लगी। जानकी ने फिर होठों पर बलपूर्वक मुस्कान उत्पन्न करते हुए पूछा।

"अब कैसी हो ?"

तरुणा ने मुँह से तो कोई उत्तर न दिया किन्तु सिर हिला दिया।

जानकी फिर बोली—"कई बार कहा ऐसा काम न किया करो…मुझे या नगीना को पुकार लिया होता।"

"नहीं भाभी ! मैंने सोचा हल्का ही होगा…" तरुणा ने बड़े धीमे स्वर में उत्तर दिया।

"तुम तो समझदार हो…शिक्षित हो…स्वयं पर नहीं तो उस बच्चे पर ही दया करो।" करुणा भरे स्वर में जानकी ने कहा।

"क्या किया मैंने भाभी !"

"अब तुमसे कहूँ ?"

'क्या है भाभी ! साफ-साफ कहो ना।"

"तुम में और दूसरी गर्भवती स्त्रियों में बड़ा अंतर है।"

"क्या ?"

"पेट में उस दिन तुम्हारे गिरने से बच्चा उल्टा हो चुका है… इस से प्राणों तक का भय है।"

"तो क्या हुआ मर ही जाऊँगी ना ?"

"तरुण ! कैसी बातें कर रही हो ? पहले तो तुमने मुझे ऐसा रूखा उत्तर कभी न दिया था।"

"बच्चे के साथ मेरी बुद्धि भी उल्टी हो गई है…क्यों भाभी !"

"तरुण ! भाभी ने चिल्लाते हुए उसे चुप कर दिया और उठकर बाहर जाने लगी। जाते-जाते क्षण भर के लिए रुकी और बोली—"तरुण तुम्हारे मन में आजकल यह कैसे भ्रम उत्पन्न हो रहे हैं—यह सब मेरी समझ के बाहर है…हमारे लिए न सही निर्मल ही के लिए अपनी और उसकी निशानी के लिए ही अपनी रक्षा करो।"

तरुणा ने बाहर जाते हुए भाभी को देखा। उसकी आँखों के

आंसू भी उससे छिपे न रह सके। सहसा भावना ने पल्टा खाया और उसने भाभी को पुकार कर अपने पास बैठ जाने को कहा।

"भाभी ! मुझे क्षमा कर दो—न जाने आजकल यह मुझे क्या होता जा रहा है।" थरथराते हुए होठों से उसने यह शब्द कहे और जानकी की गोद में सिर रख कर रोने लगी।

"पगली ! यह तुझे क्या हुआ जा रहा है।"

"भाभी ! न जाने मैं स्वयं नहीं समझ पाती कि मैं क्या कहती हूँ···क्या करती हूँ···मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता—स्वयं अपने जीवन से घृणा होती जा रही है।"

"ठहर ! निर्मल आया तो उससे कह दूँगी तुम्हारी यह उल्टी-सीधी बातें···" जानकी ने स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"भाभी ! एक प्रार्थना है ?"

"क्या ?"

"ऐसा नहीं हो सकता कि मैं कुछ महीनों के लिए उनके पास पूना चली जाऊं।"

"ऐसी दशा में···" वह आश्चर्य से उसकी ओर देखते बोली "नहीं-नहीं तुम्हारे भैया कभी न मानेंगे।"

"तुम चाहो तो वह इन्कार न करेंगे।"

"इतने दिन हो गये और अभी उन्हें नहीं समझ सकी···वह डाक्टर हैं, इस विषय में किसी की न सुनेंगे।"

"तो मैं स्वयं ही चली जाऊँगी।"

"तरुण !"

"हाँ भाभी ! अब मेरा मन यहाँ नहीं लगता।"

"कुछ महीनों की बात है···फिर चली जाना।"

तरुण चुप हो गई। भाभी उसे सांत्वना देते हुए चली गई। तरुण ने मन की बात कह तो दी किन्तु जानकी के चले जाने के

बाद पछताने लगी।

रात जब डाक्टर द्वारकादास घर में आये तो वह डरने लगी कि भाभी ने अवश्य भैया से कह दिया होगा। वह क्या कहेंगे, क्या सोचेंगे, वह मन ही मन खिन्न हो गई। रात के खाने से निबट कर डाक्टर द्वारकादास जानकी के साथ उसके कमरे में आये। वह पहले ही घबराहट से मरी जा रही थी, उन्हें सामने देखकर मानो उसके रक्त का प्रवाह रुक गया।

डाक्टर द्वारकादास ने आते ही एक दृष्टि मेज पर रखी हुई दवाइयों की शीशियों पर डाली और उसकी कुशलता पूछने लगे। अचानक उनकी दृष्टि बुक केस में रखी पुस्तकों पर गई और एक उपन्यास हाथ में लेते हुए उन्होंने नाम पढ़ा 'चित्रलेखा'। जानकी की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा—

"जनक ! तुमने भी इसे पढ़ा है क्या ?"

' नहीं—"

"कभी पढ़ लेना··· हिन्दी भाषा का एक उत्तम उपन्यास है।"

"आपने पढ़ा है क्या ?"

"हूँ···पाप और पुण्य की बड़ी सुन्दर व्याख्या की गई है।"

डाक्टर द्वारकादास ने देखा कि तरुणा का रंग फीका पड़ गया है, वह किसी गहरे सोच में पड़ गई। उन्होंने पुस्तक वहीं रख दी जहाँ से उठाई थी और तरुणा से सम्बोधित होकर बोले—

"तुम्हारा क्या विचार है, तरुणा।"

"जी !" वह एकाएक चौंक गई जैसे किसी ने नींद से झंझोड़ दिया हो।

डाक्टर द्वारकादास ने फिर प्रश्न दोहराया—"इस उपन्यास के विषय में···"

"जी, अभी अधूरा है।" वह धीमे स्वर में बुड़बुड़ाई।

' हाँ, तरुणा ! सुना है तुम पूना जाना चाहती हो···" एकाएक

बात बदलते हुए वह बोले।

तरुण काँप सी गई और जानकी की ओर देखने लगी जो होठों में मुस्कराहट दबाये उसे निहार रही थी। क्षण-भर वह उसकी ओर देखती रही और फिर बोली—

"नहीं तो—"

"भेज तो दूं···किन्तु; सोचता हूँ वहाँ अकेली क्या करोगी ?" डाक्टर द्वारकादास ने बिना उसका उत्तर सुने कहा।

तरुणा चुप रही। उसकी आँखें ऊपर न उठ रही थीं। थोड़ी देर के मौन के बाद उन्होंने बात चालू रखी—"यहाँ हम हैं···मुन्ना है—घर में रौनक है·· वहाँ तुम्हारे पास कौन होगा— निर्मल को कोर्स से अवकाश नहीं होगा और फिर वह स्वयं भी तो दशहरे की छुट्टियों में आ रहा है—"

निर्मल के आने की सुनकर तरुणा के पीले गालों में एक हल्की सी लालिमा झलकी—वह वैसे ही सिर झुकाये बैठी रही—उसने सोचा—शायद वह उसे बहलाने के लिए यह बात कह रहे हों—किन्तु वह उससे झूठ क्यों कहने लगे—अब तक भैया को उसने कभी झूठ कहते न सुना था। एकाएक उसने आँखें उठाईं। वह दोनों खड़े मुस्करा रहे थे। डाक्टर द्वारकादास के हाथ में निर्मल का पत्र था जो उन्होंने तरुणा के बिस्तर पर फेंक दिया और बाहर चले गये। तरुणा ने काँपती उँगलियों से पत्र उठा लिया और प्रतीक्षा करने लगी कब भाभी बाहर जाये और वह पत्र खोलकर पढ़े।

"भाभी ! तुम्हारे मन में भी कभी कोई बात नहीं रही।" उस के उदास मुख पर भी मुस्कान की रेखा फैल गई थी।

जानकी ने झट से रेडियो का स्विच दबाया और हँसती हुई बाहर चली गई।

रेडियो पर सितार की मधुर धुन तरुणा के हृदय को छूने लगी। निर्मल के आने की तनिक-सी सूचना ने उसके लिए वातावरण को

सुन्दर बना दिया—एक नन्ही-सी फुहार से सूखते हुए उद्यान में बसन्त छा गया।

उसने झट लिफाफा खोला और निर्मल का पत्र पढ़ने लगी। नीले रंग के कागज पर दो-तीन पंक्तियाँ ही लिखी थीं किन्तु; तरुणा के लिए इस समय यह संसार-भर के बड़ी-बड़ी पोथियों में छिपे ज्ञान से भी भारी थीं—वह तकिए पर सिर रखकर सितार की मधुर धुन सुनने लगी—संगीत मिलन का सन्देश दे रहा था।

तेरह

बाहर दूर से आती हुई मिली-जुली आवाजें उसके कानों से टकरा रही थीं। वातावरण में सर्वत्र एक गुनगुनाहट-सी भरी थी। आज दशहरा का अन्तिम दिन था। आज के दिन सच की विजय हुई थी और पाप का विनाश। रावण जल चुका था और गोले छूटने से थोड़ी-थोड़ी देर बाद धमाके हो रहे थे।

तरुणा घर पर अकेली थी। डाक्टर द्वारकादास सबको लेकर मेला देखने गए हुए थे। निर्मल तो उसे भी साथ ले जाना चाहता था किन्तु; भैया उसका धूल और भीड़ में जाना उचित न समझे··· अपना बेढब शरीर लेकर उसे स्वयं भी बाहर निकलना अच्छा न लगता था। घर में सर्वत्र मौन था।

अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे तरुणा थक-सी गई। यूंही परिवर्तन के लिए वह उठकर गोल कमरे में आ बैठी। सहसा विचार आया कि उसने अभी तक अपना एक्सरे नहीं देखा···इससे अच्छा अवसर कौनसा हो सकता था। वह धीरे-से उठी और भैया के कमरे में चली आई और उसने अलमारी में अपना एक्सरे ढूंढ़ ही लिया। एक बड़े

से काले लिफाफे पर उसका नाम लिखा था। उसने झट लिफाफे में से ऐक्सरे निकाला और देखने लगी। कमरे में अन्धेरा था। वह ऐक्सरे को लिए खिड़की के पास आ खड़ी हुई और ध्यान से देखने लगी।

कमरे में उजाला हो गया और काले और श्वेत धब्बे स्पष्ट दिखाई देने लगे। वह अपने अनुमान से उन्हें समझने का प्रयत्न करने लगी। एक-एक वह चौंक गई और स्तब्ध खड़ी रह गई। कमरे में यह अचानक उजाला कैसे हो गया···उसने तो बटन नहीं दबाया था। बिजली की-सी तेजी से वह मुड़ी और कमरे के कोने में बैठे डाक्टर द्वारकादास को देखकर काँप गई। वह आराम कुर्सी पर बैठे हाथ में कोई पुस्तक लिए उसकी ओर देख रहे थे। इससे पूर्व कि वह कुछ कहती वह बोले—

"तुम्हारी ही रिपोर्ट है···सावधानी से उजाले में देख लो।"

"आप!" उसके काँपते हुए होठों से निकला और एक्सरे उसके हाथ से छूटकर धरती पर गिर गया। भैया की एकाएक उपस्थिति ने उसे अस्थिर कर दिया था। उसमें इतना भी बल न था कि वह गिरे हुए एक्सरे को उठा लेती।

डाक्टर द्वारकादास धीरे-से अपनी कुर्सी से उठे और गिरे हुए ऐक्सरे को उठाकर लिफाफे में रखते हुए बोले—

"इतना कष्ट क्यों किया···कहा होता तो वहीं भिजवा देता।"

तरुणा पसीने में लत-पत मूर्ति बनी खड़ी रही।

"आप···आप गये नहीं!" उसने क्षण-भर मौन खड़े होकर उनकी बात का उत्तर न देते हुए थरथराते होठों से पूछा।

"गया था···किन्तु उन्हें छोड़कर उसी समय चला आया। यह भीड़-भड़क्का मुझे अच्छा नहीं लगता।"

तरुणा ने और कुछ न कहा और बाहर जाने लगी। अभी वह देहली तक ही गई होगी कि डाक्टर द्वारकादास ने पुकारकर उसे

रोक लिया—

"इधर आओ···बैठ जाओ।"

वह वहीं किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी हो गई और उनके अगले प्रश्न की प्रतीक्षा करने लगी।

"तरुण! कुछ दिन से देख रहा हूँ तुम बहुत चिन्तित दिखाई देती हो।"

"जी···नहीं तो···"

"यूँ बनने से कोई लाभ नहीं···यह हर समय तनाव-सा···सबको शंका से देखना···रूखी-रूखी बातें करना—किसी की बात न सुनना न मानना जैसे मन में चोर बैठा हो···ऐसा क्यों? क्या हम तुम्हारे वैरी हैं?" डाक्टर द्वारकादास ने एक ही साँस में प्रश्नों की बौछार कर दी। तरुणा देखती की देखती रह गई—वह इस कठोर आक्रमण के लिए तैयार न थी। उसका सिर चकराने लगा···उसे कुछ सूझ न रहा था क्या उत्तर दे···

डाक्टर द्वारकादास उसके पास आकर बोले—"तरुण! अतीत को भूल जाओ···यह बिसार दो कि तुमने कभी कोई पाप किया···यदि तुम उन घिनौनी यादों को मन में बसाये रखोगी तो तुम्हारा पूरा जीवन बोझ-सा बन जायेगा···तुम नहीं समझतीं कि इस समय तुम्हें और तुम्हारे बच्चे को किस बात की आवश्यकता है···साधारण-सी भूल भी तुम्हारे जीवन को नष्ट कर सकती है—"

तरुणा को और कुछ सुनने की शक्ति न रही, वह एकाएक ज्वालामुखी के समान फट पड़ी—"भविष्य, भविष्य···भविष्य संभल भी जाये तो क्या होगा···अतीत जो हर समय मृत्यु की छाया बने पंख फैलाये रहता है···और वर्तमान?···तड़पने, डरने और सिसकने के अतिरिक्त कुछ नहीं—आप लोगों ने आखिर समझा क्या है? मैंने कौन-सा पाप किया है जो···" उससे और कुछ न कहा गया। वह थककर हाँपने लगी और किवाड़ का सहारा लेकर पास की

खिड़की के सामने आकर उसकी मुंडेर पर सिर टिकाकर खड़ी हो गई।

डाक्टर द्वारकादास उसके दुख को अनुभव करके सहानुभूति से उसे देखते हुए विनम्र स्वर में बोले—

"कौन कहता है तुमने कोई पाप किया है ?"

"आप···भाभी···"

"यह तुम्हारा भ्रम है···वह क्यों कहने लगी···वह तुम्हारे संबंध में कुछ नहीं जानती—तुम्हारा भेद बस मुझी तक सीमित है—"

"मैं कैसे विश्वास कर लूं जबकि मैंने स्वयं उनका सपना—"

"वह केवल सपना था—" डाक्टर द्वारकादास उसकी बात काटते हुए बोले, ' रही बात मेरी—मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया—आज नहीं उसी दिन जब तुम मेरे घर बहू बनकर आई थीं—मेरे परिवार की मर्यादा—और फिर यहाँ पूर्ण निर्दोषी कौन है ? तुमने तो प्रायश्चित भी कर लिया है—"

"प्रायश्चित् वह बुड़बुड़ाई।"

"हाँ, मेरा कहा मानकर—"

तरुणा कुछ कहते-कहते रुक गई। वह उसे शंका की दृष्टि से देखते आ रहे थे—उसने इस समय उन्हें कोई और बात कहना उचित न समझा और संभलकर बाहर जाने लगी। डाक्टर द्वारकादास ने उसे फिर पुकारा—

"तरुण !"

"जी—"

"वचन दो कि अपने आपको चिन्तित रखकर सब घर को बेचैन न करोगी।"

"मेरे दुख से क्या सभी दुखी होते हैं ?"

"सोचने की बात है, तुम्हें दुखी देखकर कौन चैन से रह सकता है—"

"तो मेरी यह छोटी-सी प्रार्थना मानिए।"

"क्या ?"

"मुझे उनके साथ अबकी बार पूना भिजवा दीजिए।"

"इस दशा में ?"

"क्या हुआ, वहाँ भी हस्पताल होगा—जलवायु का परिवर्तन ही सही—"

"नहीं तरुण—यह असम्भव है।"

"क्यों ?" उसने दृष्टि ऊपर उठाकर आश्चर्य से डाक्टर द्वारका-दास की ओर देखा।

"यह केवल तुम्हारे जीवन या किसी की प्रसन्नता का प्रश्न नहीं किन्तु; एक ऐसे चिराग का प्रश्न है जो इस परिवार का चिराग होगा—दीपक होगा—इस कुल में उजाला करेगा—इसकी सुरक्षा करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है—अब मैं तुमसे क्योंकर कहूँ कि तुम्हारा बिस्तर से नीचे उतरना भी ठीक नहीं—और तुम पूना जाने की कहती हो—" कहते-कहते वह रुक गये और दृष्टि घुमाकर देखने लगे। तरुणा वहाँ से चली गई थी और वह दीवार से बातें कर रहे थे, उन्होंने लपककर बाहर देखा, तरुणा अपने कमरे में प्रवेश कर रही थी। वह चुप हो गये और कुर्सी पर बैठकर उसका एक्सरे देखने लगे।

निर्मल इत्यादि जब दशहरा के मेले से लौटे तो रात हो चुकी थी। नगीना और भाभी तो कपड़े बदलकर सीधे रसोई घर में चली गई और निर्मल भैया को मेज पर बैठे किसी काम में लगे देखकर मुन्ने को बाँहों में उठाये अपने कमरे में आ गया।

किवाड़ पर हल्की-सी आहट हुई और मुन्ने को लिए निर्मल ने प्रवेश किया। तरुणा स्वेटर छोड़कर उसे देखने लगी। मुन्ना उसकी गोद में बड़ा सुन्दर लग रहा था। उसके दोनों हाथ खिलौनों और गुब्बारों से भरे हुए थे। भीतर आते ही वह निर्मल की बाँहों से

उतरकर चिल्लाता हुआ तरुणा की ओर भागा—

"आंती—आंती—देखो अंकल ने कितने खिलौने ले दिये···?" तरुणा की चारपाई के पास पहुँचकर उसने जेब से एक टॉफी निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—

"तुमाले लिए लाया हूँ—"

तरुणा ने टॉफी ले ली और निर्मल की ओर देखने लगी जो सामने खड़ा मुस्करा रहा था। मुन्ने को देखकर भी उसके अपने होठों पर मुस्कराहट न आई थी। मुन्ना उसे टॉफी देकर बाहर भाग कर जाने लगा।

"कहाँ चला।" तरुणा ने उसका हाथ पकड़ते हुए पूछा।

"बाबा के पाछ—उनके लिए टॉफियाँ लाया हूँ।" सूरज ने जेब में से मुट्ठी भर टॉफियाँ निकालीं।

"इतनी—"

"हूँ—वह मेले बाबा हैं ना—" मुन्ना हाथ छुड़ाकर भाग गया।

तरुणा के मन को मुन्ने की इस बात से एक चोट लगी। वह चुप हो गई और बिस्तर पर रखे हुए मुन्ने के वैलून को उंगलियों से दबाते हुए शून्य में देखने लगी। निर्मल ने कुर्सी खिसकाई और उसके पास बैठ गया। सहसा वैलून फट गया, एक धमाका हुआ और तरुणा काँप गई। दोनों की दृष्टि मिली।

"तरुणा क्या सोच रही हो ?" निर्मल ने पूछा।

सोच रही हूँ—यदि मेरा बच्चा होता तो मेरे लिए भी मुट्ठी भर कर टॉफियाँ लाता।"

"तो चिन्ता क्या—बस तो महीने और–फिर जी भर के टॉफियाँ लिया करना।"

तरुणा चुप हो गई और फिर किसी सोच में खो गई। उसके माथे पर पसीने की बूँदें एकत्रित हो गई थीं। निर्मल उठकर उसके

बिस्तर पर बैठ गया और उसी के आँचल से उसका पसीना पोंछते हुए बोला—तरुण ?"

तरुणा ने दृष्टि उपर उठाई।

"क्या मुझसे मन की बात न कहोगी—?" निर्मल ने मुस्करा कर उसके गालों को छूते हुए पूछा।

"सुन सकियेगा—" उसने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

"क्या ?" निर्मल आश्चर्य से देखते बोला। वह सोचने लगा कौन-सी ऐसी बात हो सकती है जो उसे सुनाना चाहती है।

तरुणा थोड़ी देर चुप रही और फिर बोली—

"मुझे यहाँ से ले चलिए—"

"कहाँ ?"

"पूना—अपने साथ—।"

"ऐसी दशा में ?"

"तो क्या हुआ—वहाँ क्या हस्पताल नहीं ?"

"हैं—किन्तु यहाँ की बात कुछ और है—भैया जो हैं यहाँ—और फिर तुम्हारा केस कुछ सीरियस (Serious) ढंग का है—तुम तो जानती हो प्राणों तक का भय है···।"

"मेरे प्राणों का ना···मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

"तरुण।" वह ऊँचे स्वर से चिल्लाया और फिर चुप हो गया। तरुणा की इस बात ने उसे बेचैन कर दिया था। तरुणा वैसे ही गम्भीर और उदास उसे देखे जा रही थी। वह फिर बोला,··· "नहीं, नहीं तरुण ! यह सम्भव नहीं···भैया इसे कभी न मानेंगे···।"

तरुणा थोड़ी देर मौन रही और फिर बोली—

"तो ऐसा कीजिए···यह दो महीने मेरे पास ही रहिए।"

निर्मल झुंझलाकर बाहर चला गया। तरुणा तकिये में मुह छिपा अपनी विवशता पर रोने लगी। वह अपने मन की पीड़ा भी तो उस पर प्रगट न कर सकती थी। कई बार तो उसने सोचा कि

निर्मल से यह सब रहस्य कह डाले किन्तु न जाने क्यों वह इसका साहस भी न कर पाती···अब तो वह अकेली ही इस ज्वाला में फुंक रही थी और यदि उसका रहस्य सब पर प्रगट हो गया तो निर्मल को भी उसमें जलना पड़ेगा और हो सकता है पूरा घर इस लपेट में न आ जाये—उसके कारण यह स्वर्ग नर्क में परिवर्तित हो जाएगा।

रात को निर्मल देर से अपने कमरे में लौटा। वह भैया के कमरे में ही बैठा भैया और भाभी से गप-शप लड़ाता रहा। साईड लैम्प के धुंधले प्रकाश में तरुणा ने उसे आते देखा और मुंह मोड़कर लेट रही। निर्मल ने कपड़े बदले और बिजली बुझाकर अपने बिस्तर पर लेट गया।

अंधेरा होते ही तरुणा की आंखें खुल गईं और वह साथ वाले बिस्तर पर देखने लगी जहाँ निर्मल दूसरी ओर मुंह किए सोने का प्रयत्न कर रहा था।

आज वह उससे रुष्ट था···वह उससे बोलना भी न चाहता था इसीलिए वह इतनी देर तक भैया के कमरे में बैठा रहा—शायद उसको यहाँ से पूना ले जाना अच्छा न लग रहा था · वह अपने भैया को अप्रसन्न न करना चाहता था··· हो सकता है वह उनसे कहने का साहस न कर पाता हो······तरुणा की समझ में कुछ न आया। थोड़ी देर तक वह उसकी ओर अंधेरे में देखती रही। उसका विचार था कि वह करवट लेकर उससे बातें करेगा किन्तु जब न उसने कोई करवट ही ली और न उससे बात की तो वह धीरे-से अपनी चारपाई से उठी और रेंगती हुई उसके बिस्तर पर आ गई। निर्मल जाग रहा था। एकाएक पलटा और बनते हुए बुड़बुड़ाया···

"कौन ?"

"मैं···"

"ओह···तुम···सोई नहीं अभी तक क्या ?"

"नहीं···न जाने क्यों अकेले में डर लग रहा है···"

"अकेले में तो नहीं···" मैं जो हूँ—आज···असावधानी से वह बोला।

"यह जली-कटी बातें क्यों सुना रहे हो ?"

निर्मल चुप रहा। वह फिर बोली—"मेरा पास आना इतना बुरा लगता है तो लो मैं चली जाती हूँ" यह कह वह जाने लगी।

निर्मल ने हाथ फैलाकर उसे रोक लिया। तरुणा का मन पिघल गया। वह उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोली—

"अब मैं कभी आपसे मन की बात न कहूँगी।"

"यह मैंने कब कहा ?"

'तो आप मुझ से रूठे क्यों हैं ?"

"मैं या तुम ? आज भैया भी कह रहे थे कि तुम बड़ी उदास रहने लगी हो।"

"और क्या कहते थे ?"

"कहते थे कि तुम सावधानी और दवाई दोनों की बैरन हो··· तुम्हारी यह दशा भी अपनी असावधानी के कारण ही है।"

"अब क्या होगा ?"

"घबराओ नहीं···भैया के होते हुए तुम्हें रत्ती-भर भी चिन्ता नहीं होनी चाहिए।"

"और मुझे कुछ हो गया तो—"

"पगली ! जैसा भी वे कहें मानती जाओ······फिर भला क्या होगा ?"

"मैं यहीं रहूँ···आप यह चाहते हैं ?"

"कुछ एक महीनों की बात तो है······फिर मुझे फैमली स्टेशन मिल ही रहा है, दो बरस के लिए।"

"और यदि न मिला तो···?"

"न मिला तो···यह कैसे हो सकता है ?"

"आप मिलिट्री वालों का क्या विश्वास? कहते कुछ हैं और आर्डर कुछ मिल जाता है।"

"ओह···" एक फीकी-सी हँसी निर्मल के मुँह से निकली, "वास्तव में यह नौकरी ऐसी ही है, मन को सान्त्वना देने को हम शुभ बात सोच लेते हैं किन्तु; होता क्या है इसका हमें भी ज्ञान नहीं। यदि मैं जानता ब्याह के बाद तुम्हारे साथ न रह सकूंगा तो कभी ब्याह··"

"ऐसा मत कहिये," तरुणा ने उसके मुँह पर हाथ रखकर उसकी बात वहीं रोक दी और बोली, "मैंने कभी भी यूँ नहीं सोचा—आप चाहे कहीं भी हों मेरे हृदय में हैं, मेरे समीप हैं।" यह कहकर उसने अपना सिर उसके वक्ष पर रख दिया।

निर्मल प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। दोनों बड़ी देर तक यूंही चुप रहे और एकाएक निर्मल ने पूछा—

"तरुण! यह क्यों होता है?"

"क्या?"

"पुरुष चाहे कितना ही क्रोध में क्यों न हो स्त्री के एक भाव से पिघल जाता है।"

"इसलिए कि वह अपनी भावना की डोरी मिलन के पहले दिन ही उसे सौंप देता है···और वह जब भी चाहे उसे खींचकर ढेर कर देती है···"

निर्मल हँसने लगा और उसने तरुणा को अपनी बाँहों में भींच लिया। आलिंगन में मन और शरीर की थकन दूर हो गई···गिले धुल गए।

दशहरे की छुट्टियाँ शीघ्र बीत गईं। हँसी विनोद और मिलन में तरुणा को समय के बीतने का पता ही न चला। इसका ज्ञान तो उसे तब हुआ जब निर्मल चला गया। उसके जीवन में फिर से पतझड़ आ गई और वह उदास रहने लगी।

डाक्टर द्वारकादास और जानकी सदा उसका ध्यान रखते। खाने-पीने, बैठने-उठने में बड़ी देख-भाल करते कि कहीं तनिक-सी भूल से भी केस बिगड़ न जाए। अब अड़ोस-पड़ोस मुहल्ले में यही चर्चा रहने लगी। स्त्रियाँ उसे देखने के लिए आतीं और हर आने वाली अपने-अपने अनुभव से कोई आदेश दे जाती। वह स्वयं बड़ी चिन्ता में प्रतीक्षा करती रही कि कब यह दिन पूरे हों और वह इस कष्ट से छूटे।

एक शाम अचानक उसके पेट में बड़ी तीव्र पीड़ा उठी। घर वाले सब बेचैन हो गए। डाक्टर द्वारकादास ने उसके तीन इंजेक्शन लगा दिये तब कहीं जाकर उसे चैन मिला। सावधानी के लिए उन्होंने एक और डाक्टर को भी बुला लिया।

दोनों डाक्टर बड़ी देर तक उसके पास बैठे उसकी दशा देखते रहे। अधिक रात हो जाने पर डाक्टर द्वारकादास दूसरे डाक्टर को छोड़ने चले गये और जब वह लौटे तो तरुणा इंजेक्शन के कारण अभी तक आँखें मूँदे पड़ी थी। शायद थोड़ी-थोड़ी सुध हो। जानकी पास बैठी उनके आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

"सो गई क्या ?" उन्होंने आते ही पूछा।

"होश में ही कब आई।" जानकी ने धीरे से कहते हुए उन्हें पास बैठने का संकेत किया। डाक्टर द्वारकादास तरुणा पर दृष्टि डालते हुए बैठ गये और फिर जानकी की ओर देखते हुए बोले—

"सूरज कहाँ है ?"

"सो गया है···हां क्या कहा है डाक्टर ने ?" जानकी ने बात बदलते हुए पूछा।

"वही जो मेरा अनुमान था।"

"क्या ?"

"तरुणा को हस्पताल में भर्ती करवाना पड़ेगा।"

"अभी से !"

"हाँ···मुझे शंका है वह दवाई नहीं पीती।"

"तो वहाँ पी लेगी क्या ?"

"वहाँ हर प्रकार की सावधानी रहेगी और सुविधा भी···यहाँ न जाने आने-जाने वाली स्त्रियाँ क्या कुछ कह जाती हैं।"

"यह तो आपने ठीक कहा, कल हीं पारवती कह रही थी कि जब पेट में बच्चा उलट जाये तो पेट को चीरकर बाहर निकाला जाता है।"

"उसने ठीक कहा···प्रायः ऐसा भी करना पड़ता है···इससे माँ और बच्चा दोनों की जान खतरे में होती है।"

"तो क्या तरुणा···"

"नहीं···शायद इसकी आवश्यकता न पड़े···" अभी शब्द उनकी जबान पर ही थे कि तरुणा को बिस्तर पर हिलते देखकर वह चुप हो गये और पास आकर उसे देखने लगे। वह होश में थी और सब बातें सुन रही थी। डाक्टर द्वारकादास को झुके हुए देख-कर वह काँपते हुए स्वर में बुड़बुड़ाई—

"पा···नी···"

"तरुणा !" जानकी ने झुकते हुए उसके कान में पुकारा। डाक्टर द्वारकादास नें ग्लूकोज का पानी जानकी के हाथ में दे दिया और उसने ग्लूकोज के दो चम्मच उसके मुँह में डाल दिये। थोड़ी देर बाद तरुणा ने आंखें खोल दीं और दोनों को पास खड़े देखकर फिर पलकें मूँद लीं। डाक्टर द्वारकादास ने सोचा शायद अभी तक इंजेक्शन का प्रभाव दूर नहीं हुआ है और कसे आराम की आव-श्यकता है इसलिये वह जानकी को साथ लेकर अपने कमरे में चले गये।

कमरे में मौन छा गया। तरुणा ने आँखें खोलकर इधर-उधर देखा नगीना भीतर आई और फर्श पर अपना बिस्तर जमानें लगी। तरुणा ने फिर पलकें बन्द कर लीं और सोने का प्रयत्न करने लगी।

वह बहुत थक गई थी और सोचनें की शक्ति खो चुकी थी। धीरे-धीरे उसकी पलकें बोझिल होने लगीं और वह नींद में डूब गई।

चौदह

तरुणा को हस्पताल में आये आज तीसरा दिन था। पहले दो दिन तो उसका मन बिकुल्ल न लगा। उसे यूँ लगा जैसे एक जेल से छूटकर दूसरी में आ ठहर हो। किन्तु अब धीरे-धीरे उसे कुछ संतोष आ गया था।

यहाँ वैसा कष्ट और नीरसता न थी। हर समय चहल-पहल सी रहती थी। थी तो वह प्राइवेट वार्ड में किन्तु; जनरल वार्ड साथ ही था और निरन्तर लोगों के आने-जाने से यह भास होता जैसे वह इस जीवन मार्ग में अकेली नही बल्कि कई और साथी भी उसके साथ हैं।

वार्ड में से जब भी कोई स्त्री लेबर-रूम में ले जाई जाती वह तड़प कर उठ बैठती और तब तक उसे चैन न आता जब तक नर्स आकर उसे यह बता न देती कि माँ और बच्चा दोनों कुशल हैं। जाने क्यों उसकी प्रकृति बड़ी छान-बीन करने की हो गई थी। वह नर्सों पर प्रश्नों की बौछार कर देती···वह कौन थी ? उसका पति कहाँ था ? पहला बच्चा है या दूसरा ? बच्चा आराम से हुआ अथवा ऑपरेशन से ?

शाम को जब नर्स उसका ताप देखने आई तो तरुणा ने पूछा—

"क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि बच्चा होते ही माँ मर जाये ?"

"होता है···किन्तु कभी-कभी—और वह भी तब जब माँ बहुत कमजोर हो अथवा कोइ विशेष सीरियस (Serious) केस हो।

"कैसा ?"

"प्राय: जब बच्चा माँ का पेट चीरकर निकाला जाये।"

"क्या बहुत भारी आपरेशन होता है ?"

"हाँ—कभी-कभी तो बच्चा होने के बाद ऐसा भी हुआ है कि फिर बच्चा नहीं हो सकता।"

"सच···" उसकी हल्की सी चीख निकल गई।

"किन्तु; आप मुझसे यह सब क्यों पूछती हैं···आपका केस तो बहुत अच्छा है···यहाँ के सबसे बड़े और प्रसिद्ध डाक्टर के हाथ में है और फिर यह डाक्टर द्वारकादास का निजी केस है। नर्स थर्मामीटर उसके मुँह में लगाकर एक ही साँस में यह सब कह गई और केस-सीट में ताप लिखकर बाहर चली गई।

"कहाँ चलीं !" तरुणा ने उसे जाते देख पूछा।

"लेबर-रूम में···नम्बर दस का केस करने।"

नर्स चली गई और तरुणा टकटकी लगाये उस द्वार की ओर देखने लगी जहाँ से वह गई थी। नर्स के कहे हुए शब्द अभी तक उसके कानों में गूँज रहे थे···वह सोचने लगी···वह ठीक ही तो कहती है···उसका केस यहाँ के सबसे बड़े सर्जन के पास होगा···फिर वह क्यों डरती है ? डाक्टर नर्स, दवाइयाँ अब तो उसे सब सुविधायें प्राप्त हैं···एक वह भी समय था जब उसके पास कुछ भी न था··· वह मृत्यु की शय्या पर लेटी एक-एक क्षण गिन रही थी। भय, लोक लाज और अनिश्चित भविष्य का अंधकार उस पर छाया डाले हुए थे···उस समय वह बच निकली···वह तो उसका पहला बच्चा था।

पहला बच्चा···उसके मस्तिष्क के छायापट पर अतीत के वह छाया चित्र उभर आये जो समय के अंधकार में लुप्त हो चुके थे। उसकी आँखों के सामने गाँव की वह टूटी-फूटी अंधेरी कोठरी आ गई जिसमें उसने सूरज को जन्म दिया था···बाहर समाज का भय और भीतर अन्त:करण की धिक्कार···उफ ! क्या जीवन था···कितना

अपमानजनक कई बार उसने आत्म-हत्या करने की सोची—किन्तु फिर रुक गई। वह घण्टों टकटकी बाँधे…उस टूटे रोशनदान को देखती रहती जिसमें से उजाले की एक किरण उसे आशा का सन्देश देती…न जाने वह कब तक स्मृति सागर में बहे जाती यदि सामने खड़ी जानकी को देखकर वह चौंक न जाती। वह बड़ी देर से द्वार पर खड़ी उसे निहार रही थी, दोनों की दृष्टि मिली।

तरुणा ने उसे कुछ कहने को होंट हिलाये किन्तु, उसके मुँह से आवाज न निकली।

"कैसी हो तरुण !" जानकी ने मुस्कराते हुए पूछा।

"अच्छी हूँ—भाभी !" उसने टूटे हुए शब्दों में उत्तर दिया।

"देखो ! तुम्हारे लिए क्या लाई हूँ ?" जानकी ने एक सेब हाथ में लेते हुए फलों की टोकरी को एक ओर रख दिया और सेब बलपूर्वक उसके मुँह में ठूँस दिया।

"काट तो लो पहले ?" उसने सेब को लौटाते हुए कहा।

"नहीं छीलने और काटने से सेव के विटामिन नष्ट हो जाते हैं।"

तरुणा के पीले-नीरस मुख पर हल्की-सी मुस्कान फैल गई और उसने सेब को दाँतों से काटना आरम्भ किया।

"मुन्ने के मामा ने भेजे हैं, कुल्लू से…"

"मुन्ने का मामा…यह सुनकर तरुणा क्षण-भर के लिए काँप उठी और झट संभल कर धीरे-से बोली—

"कौन…मामा !"

"मेरे बड़े भाई…कुल्लू में अपना बाग है।"

"मुन्ना कैसा है भाभी ?"

"ठीक है…साथ आने के लिए हठ कर रहा था।"

"ले आतीं…"

"सोचा…हस्पताल में ले जाना अच्छा नहीं…"

"मुझ से तो डर नहीं लगा ?"

"तरुण ! यह क्या कहा तुमने ?"

"कुछ नहीं, कभी मुझे भी याद करता है ?"

"करता है···पर तुमसे अधिक अपने आने वाले भैया को याद करता है···"

"झूठ ! उसे भैया तो पसन्द नहीं···वह तो नन्हीं-सी बहन की आशा लिये है।"

"ऐसा न कहो तरुण ! हमें लड़का चाहिए···"

"क्यों ?"

"लड़के से कुल चलता है···पहला लड़का ही होना चाहिए।"

"वह है तो···मुन्ना···"

"है···किन्तु; अपना-अपना होता है और पराया-पराया···"

भाभी की बात सुनकर वह फिर उदास हो गई और धीरे-धीरे दाँतों से सेब काटते हुए सोचने लगी। जानकी बैठी उसे देखती रही। बड़ी देर तक यूँही मौन रही फिर अचानक जानकी बोली, "लो काम की बात तो भूल ही गई।"

तरुणा दृष्टि उठाकर भाभी को देखने लगी। उसने पर्स खोला और फिर बन्द करके मुस्करा पड़ी। तरुणा उत्सुकता से उसकी ओर देख रही थी, झट बोली—

"क्या है ?"

"तुम्हारा पत्र···" जानकी ने फिर पर्स खोलकर एक नीला लिफाफा उसके हाथ में दे दिया। तरुणा ने लिफाफा लेकर तकिये के नीचे रख लिया।

"पढ़ोगी नहीं।"

"शीघ्रता क्या है···पढ़ लूँगी।"

"निर्मल का है भई···"

तरुणा ने मुस्कराते हुए सिर हिला दिया।

"अरी ! कैसी हो तुम···उसकी चिट्ठी आई है और आराम से

पढ़ोगी ?"

"हाँ भाभी ! मुझ में इतना धैर्य है ।"

इसी समय नर्स भीतर से आई । बात अधूरी रह गई और दोनों ने एक-साथ उसे देखा । तरुणा ने पूछा—

"क्या हुआ ?"

"नम्बर दस का···लड़का ।"

"कैसा है ?"

"मर गया···"

"मर गया ?" तरुणा का रंग उतर गया ।

"हाँ उसका मर जाना ही अच्छा था···"

"क्यों ?" जानकी ने प्रश्न किया ।

"नहीं तो माँ के जीवन पर सदा के लिए धब्बा बनकर रह जाता—"

"धब्बा···कैसा धब्बा ?"

"वह कुँवारी है···" नर्स ने कहा और बाहर चली गई । दोनों स्तब्ध एक-दूसरे की ओर देखने लगीं···तरुणा पर इन शब्दों ने मानो बिजली-सी गिरा दी । किन्तु; वह शीघ्र संभल गई । जानकी ने मुँह बनाते हुए कहा—

"पाप···जहाँ देखो घोर पाप···कैसा कलियुग है ।"

"पहले क्या था भाभी !" तरुणा को भाभी की यह बात अच्छी न लगी ।

"यह सब कुछ न होता था···कोई बुरी दृष्टि से पराई स्त्री को देखता तो आँखें निकाल ली जाती थीं ।"

"बुरी अच्छी दृष्टि क्या होती है भाभी···सुन्दरता तो सबको भाती है, हर कोई उसे देखगा···"

"देखना बुरा नहीं···किन्तु यूँ वासना से नहीं···ऐसे नहीं कि कोई उसका सतीत्व नष्ट करके भाग जाए और वह अबला जीवन-

भर विवश द्वार-द्वार की ठोकरें खाती फिरे···"

यह तो समय और परिस्थिति की बात है···अब तुम्हीं कहो इसमें किसका दोष है स्त्री का अथवा पुरुष का ?"

"स्त्री का···यदि वह किसी को अपनी इज्जत से न खेलने दे तो किसी की क्या मजाल जो उसे हाथ भी लगा सके···"

"भाभी !" तरुणा ने गम्भीर होकर सम्बोधन किया।

"हूँ।"

"तुमने क्या युवावस्था में किसी से प्यार किया है ?"

"प्यार···राम-राम यह क्या कह रही है···मेरे पिता इन बातों में बड़े कड़े थे···घर में किसी अनजाने व्यक्ति को घुसने न देते थे···"

"वह तो सभी के पिता करते हैं—किन्तु जब कोई उनकी दृष्टि बचाकर घुस आए तो उनकी एक नहीं चलती···"

"न बाबा···हमने तो कभी ऐसा सोचा भी न था···"

"बस नारी यहीं मात खा जाती है···वह उसे मोह लेती है··· भावों से, जिसका प्रकृति ने उसे कोष दे रखा है, उसे अपनाती है··· घृणा जता कर उससे दूर भी भागती है कभी···किन्तु जब वह प्रेम के वचन देता है, पाँव पकड़कर रोता है···तो विश्वास कर लेती है और उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है···और फिर जब एक दिन उसकी आत्मा की सबसे बहुमूल्य वस्तु, उसका सतीत्व नष्ट करके भाग जाता है··· तो वह सिर पकड़कर रोती है···"

"अच्छा छोड़ो इन बातों को···घर चलूँ अब देर हो रही है।"

"भैया तुम्हें लेने नहीं आयेंगे क्या ?"

"नहीं ··आज उनकी कोई मीटिंग है इसलिए न आ सकेंगे।"

जानकी जाने को उठी और तरुणा ने तकिये के नीचे से बुनी हुई जुराबों का एक जोड़ा भाभी को देते हुए कहा—

"यह मुन्ने को पहना देना।"

"कब बनाया ?"

"आज ही पूरा हुआ है···अकेले बैठे-बैठे समय जो काटना है।"

"तो एक और बना लो···"

"किसके लिये···"

"अपने आने वाले मुन्ने के लिए···फिर यह अवकाश तुम्हें जाने कब मिले।" जानकी मुस्कराते हुए बोली और बाहर चली गई।

जब वह चली गई तो तरुणा ने तकिये के नीचे से पत्र निकाला और एकाग्र होकर पढ़ने लगी। निर्मल ने अभी आने वाले लड़के की ही अनुसूचना की थी···वह सोचने लगी दुनिया में लड़की का जन्म लेना इतना अशुभ क्यों समझा जाता है···लड़के का जन्म घर-घर में एक प्रसन्नता की तरंग भर देता है···सब यही चाहते हैं···क्या वह ऐसी भाग्यशालिनी है कि दूसरी बार भी सबकी आशाओं को रखने के लिए लड़के को जन्म देगी···बहू के पहला लड़का हो तो उसका आदर बढ़ जाता है, सब उसे आँखों पर बिठाते हैं···उसने भी तो पहले लड़के को ही जन्म दिया है किन्तु वह कैसे किसी को यह कह सकती है···वह तो आश्रम से लाया गया है···बिना माँ-बाप का बच्चा···वह पल कर बड़ा भी हो गया है किन्तु; उसके अतिरिक्त और कौन जानता है कि उसको भी इसी अभागिन की कोख ने जन्म दिया है···उसमें इसी परिवार का रक्त प्रवाहित है···यह दीप उसी ने प्रकाशमान किया है और वह स्वयं अंधकार में बैठी है···उसने अपना उजाला दूसरों को दे दिया—सोचते-सोचते उसकी आँखों में आँसू आ गए और वह तकिये पर सिर रखकर रोने लगी।

हस्पताल के कमरे में वह अकेली लेटी रो रही थी।·· इस पीड़ा में उसका कोई साथी न था, कोई आँसू पोंछने वाला न था। सहसा उसे उस नवजीवन का विचार आया···वह अकेली नहीं, उसकी अपनी कोख में से बार-बार कोई शक्ति पुकार रही थी, "माँ—मैं हूँ तेरा चिराग···तेरे जीवन का दीप—तेरी कोख का फूल···तेरे मान को बढ़ाऊँगी मैं···मुझे गोद में उठाकर तू गौरव से सिर उठा सकेगी···

और संसार इस प्रसन्नता में तेरा साथ देगा…"

दिन बीतते गए—मन भी अजीब बस्ती है…अन्धकार होता है और किसी आशा की एक तनिक-सी किरण जगमग उजाला कर देती है…फिर वह किरण लुप्त हो जाती है, अंधकार उसे दबा देता है और फिर सहसा वह किरण लौट आती है। यूँही अंधकार और उजाला साथ-साथ चलता है…बवंडर में एक दिया झिलमिला रहा है, जलता भी है बुझता भी है…तरुणा के मन की भी यही दशा थी…कभी भयानक अतीत की स्मृति और कभी उज्ज्वल भविष्य की कल्पना। उसकी पीड़ा बढ़ती जा रही थी। हर दूसरे-दिन निर्मल का पत्र आ जाता तो उसके डूबते मन को सहारा देता।

आखिर वह समय भी आ गया जिसकी सबको प्रतीक्षा थी उसकी पीड़ा इतनी बढ़ गई कि उसे कुछ समय पूर्व ही—लेबर रूम में ले जाना पड़ा। केस बिगड़ चुका था और आपरेशन के अतिरिक्त कोई उपाय न रहा। ऑपरेशन के लिए ले जाते समय डाक्टर द्वारकादास ने उसको धैर्य बँधाते हुए कहा—

"तरुण ! घबराना नहीं…यहाँ के सबसे प्रसिद्ध सर्जन तुम्हारा केस कर रहे है…इसके साथ वह मेरे मित्र भी हैं।"

"डाक्टर भैया !" उसने काँपते होठों से बड़े धीरे स्वर में उन्हें पास आने का संकेत किया। डाक्टर द्वारकादास और समीप आ गए…"

"भया ! उनको तार भिजवाकर बुलवा लीजिए मुझे कुछ हो गया…"

"पगली ! क्या सोच रही है…दो चार दिन में वह स्वयं आने वाला है…आजकल उसकी इंसपेक्शन चल रही है…दस-बारह दिन के लिए आ रहा है।"

ऑपरेशन-रूम के किवाड़ बन्द हो गए। बाहर निस्तब्धता छा गई। जानकी और डाक्टर द्वारकादास बाहर बैठकर प्रतीक्षा करने

लगे। दोनों चुप थे और एक-एक क्षण गिनकर काट रहे थे।

"ठीक तीन घंटे बाद ऑपरेशन-रूम का किवाड़ खुला और नर्स दवाइयों की ट्रे लेकर आई। डाक्टर द्वारकादास ने पूछा—

"सिस्टर···"

"यस डाक्टर! ऑपरेशन इज सक्सेसफुल (Operation is successfull)।"

"वट (What)?"

"मेल चाईल्ड (Male child)।"

डाक्टर द्वारकादास भीतर जाने को लपके। इतने में भीतर से एक और नर्स बाहर आई और उन्हें रोकते हुए बोली—

"डाक्टर! अभी नहीं।"

भाप में बन्द रुई और लिंट लिए दोनों नर्सें वापस भीतर लौट गईं। डाक्टर द्वारकादास ने पत्नी की ओर देखा। वह सिमटी हुई बैंच के कोने पर बैठी हुई थी। उन्होंने धीरे-से मुस्कराते हुए कहा, "लड़का हुआ है?"

जानकी ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए भगवान् का धन्यवाद किया और उसके गालों पर अनायास दो आँसू ढुलक आए। थोड़ी देर बाद पाँव की आहट हुई और डाक्टर द्वारकादास की दृष्टि द्वार पर टिक गई। सिविल सर्जन और दूसरे डाक्टर बाहर आए। डाक्टर द्वारकादास ने तुरन्त बढ़कर पूछा—

"तरुणा कैसी है?"

"ठीक है डाक्टर!"

"और बच्चा?"

"आई एम सोरी (I am sorry) बच्चा मरा हुआ जन्मा है।"

"डाक्टर!" डाक्टर द्वारकादास इस सूचना के लिए तैयार न थे। जानकी शायद चकराकर गिर जाती किन्तु; पास खड़ी नर्स ने उसे संभाल लिया।

उनके पूरे परिश्रम और देख-भाल पर क्षण-भर में पानी फिर गया। उन्होंने बच्चे की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उठाया था और प्रकृति ने उनका मुँह चिढ़ा दिया। आकाश को छूती हुई आकांक्षायें पलक झपकने में ढेर हो गईं।

जब तक तरुणा बेसुध थी तो ठीक था किन्तु; उसके सुध में आते ही क्या होगा?...उस पर इसका प्रभाव क्या पड़ेगा?...इस विचार से वह बेचैन हो उठे। मृत बच्चे को उन्होंने स्वयं देखा और रोती हुई जानकी को सहारा देकर बाहर निकल आए।

पन्द्रह

"आप सब मुझे यूँ क्यों देख रहे हैं? मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते? क्या आपने सुना नहीं? मैं पूछती हूँ मेरा बच्चा कहाँ है? क्या हुआ मेरे मुन्ने को?"

तरुणा पागल सी बनी चिल्ला रही थी और घर के सब व्यक्ति उसे देख रहे थे। डाक्टर द्वारकादास ने नगीना को चले जाने का संकेत किया और वह नन्हें को लेकर बाहर चली गई। जानकी एक ओर हट गई। निर्मल तरुणा के पास आ खड़ा हुआ। उसे आए दो दिन हो चुके थे और जब वह आया था तरुण की यही दशा देख रहा था। कोई भी उसके पास आता वह आँखें फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देखती और अपना बच्चा माँगने लगती।

निर्मल को सामने देखकर उसने फिर बच्चे की माँग की और जब उसने कोई उत्तर न दिया तो घूर-घूर कर उसको देखने लगी। निर्मल उसके पलंग पर बैठ गया और धीरे से बोला—

"तरुण !"

"बताईये ना हमारा मुन्ना कहाँ गया ?" उसने प्रार्थना भरे स्वर में पूछा।

"कहा ना भगवान ने वापस ले लिया है।"

"नहीं, नहीं उन्होंने मार डाला है।" उसने दोनों हाथों से निर्मल का कोट पकड़ते हुए कहा।

"किसने ?"

"आपके भैया ने···"

"तरुण ! होश में आओ··· क्या कह रही हो ?" निर्मल ने ऊँचे स्वर में चिल्लाते हुए उसकी बात काट दी। उसने एक सरसरी दृष्टि भैया और भाभी पर डाली जो कुछ दूर स्तब्ध खड़े उसकी ओर देख रहे थे।

तरुण निर्मल के कोट में मुँह छिपाकर रोने लगी। निर्मल ने उसके कंधों पर हाथ रखते हुये धीरे से उसका मुँह अपनी ओर किया और बोला—

"धैर्य रखो···तुम तो बालकों के समान मूर्ख बन रही हो··· भला भगवान् की इच्छा के सामने क्या बस—किसका दोष ?"

"दोष ! सब आपका··· मैंने कहा था मुझे यहाँ से ले चलिये··· मेरा मन पहले ही कह रहा था कि वह लोग उसे जीवित न छोड़ेंगे—किन्तु आपने मेरी एक भी न मानी।"

"तरुण ! क्या बकती जाती हो, भैया क्या कहेंगे ?"

डाक्टर द्वारकादास जो अब तक चुपचाप खड़े उनकी बातें सुन रहे थे पास आ गये। निर्मल अपना स्थान छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रखा और दुख से बोझल स्वर में बोले—

"निर्मल ! इसे कुछ न कहो···भूल मेरी है जो मैंने यह उत्तर-दायित्व अपने सिर पर ले लिया···आज यह मुझे अपने बच्चे का हत्यारा समझती है···"

"भैया ! आप इस पगली की बातों का बुरा न मानिए—यह तो बुद्धि खो बैठी है ।" निर्मल ने बड़े भाई की ओर देखते हुये क्षमा मांगी ।

"हाँ मैं बुद्धि खो बैठी हूँ—तो आप जाइयें—मुझे मेरी दशा पर छोड़ दीजियें—यहाँ क्यों खड़े हैं—मेरा जीवन तो ले चुके—अब क्या लीजियेगा ?" तरुण को फिर क्रोध आ गया ।

निर्मल उसकी जबान बंद करने को कुछ कहने ही वाला था कि डाक्टर द्वारका दास ने उसे रोक दिया और स्वयं बढ़कर तरुण के बिल्कुल सामने आ गये । क्षण-भर मौन रहा और फिर वह धीरे से तरुण को सम्बोधित करके बोले—

"तरुण ! कहना ना चाहता था किन्तु तुमने विवश कर दिया—प्रकृति का नियम है कि जो कोई किसी का जीवन लेता है स्वय उसकी खुशियां भगवान छीन लेता है—मैं और दूसरा कोई क्या कर सकता है—हो सकता है यह तुम्हारे ही अपने किसी पाप का फल हो—' उनके स्वर से स्पष्ट था कि यह बातें बड़े अनमने ढंग से कह रहे हैं।

"भैया—!"निर्मल उनके अन्तिम शब्द सुनकर चिल्लाया। इससे पहले कि वह कुछ कहता और डाक्टर द्वारकादास उसका कोई उत्तर देते तरुण संभली और चिल्लाई ।

"कह डालिए - मन की बात कह डालिये—पहेलियों में क्यों बात कर रहे हैं ।—कोई रहस्य मत रखिए—इनसे सबसे कह दीजिए कि मैं बदचलन हूँ चरित्रहीन हूँ— आपको मेरी हर हरकत पर शंका थी, सन्देह था—शायद इसीलिए आपने मेरे बच्चे के प्राण ले लिए हैं क्योंकि आपको सन्देह था कि यह भी पहले के समान किसी पाप का···कलंक न हो—"

"तरुण !" डाक्टर द्वारकादास ने उसकी बात टोक दी और उसी विनम्र किन्तु; दुखी स्वर में बोले ?—"तुम क्या हो यह तुम्हारा मन जानता है—अब इसे नंगा करने से क्या लाभ—" यह

कहते हुए वह बिना कोई उत्तर सुने लम्बे-लम्बे डग भरते हुए बाहर चले गये। जानकी भी स्थिति की सूक्ष्मता का ध्यान करते हुए उनके पीछे कमरे से निकल गई।

निर्मल जो अभी तक भैया और तरुण के बीच में हुई बातों के विषय में सोच रहा था एकाएक मुड़कर तरुण की ओर देखने लगा। वह तकिये में मुँह छिपाकर फूट-फूट कर रो रही थी। वह आश्चर्य में था कि यह क्या रहस्य है ? क्या भैया ने उसमें कोई ऐसी बात देख ली है जो क्रोध में आकर यह सब कुछ कह गये···वह फिर तरुण के पास बैठ गया और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। तरुण की सिसकियाँ ऊँची हो गयी। उसने तकिये से सिर उठाया और पति की गोद में रख दिया।

"तरुण !" कुछ देर उसकी ओर देखते रहने के बाद निर्मल ने पूछा। "भया यह क्या कह गये ?"

"वह मुझे पापिन समझते हैं उसने आँसुओं से भीगी हुई पलकें उठाते हुये कहा।"

"खोलकर कहो बात क्या है ?" निर्मल का रंग पीला पड़ गया था।

वह उस पाप के फल से परिचित हैं जो ब्याह से पूर्व हमने किया था। तरुण ने सिर नीचा करके उत्तर दिया।

"कैसे ?" वह स्तब्ध हो बोला।

' दुर्भाग्य भैया के अस्पताल में ही ले गया था। "

"तो"

"उन्होंने इन्कार कर दिया···मैं निराश होकर लौट आई किन्तु; हमारा रहस्य उनके पास रह गया।"

"बहुत बुरा हुआ···किन्तु आज तक तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं।"

' कैसे कहती··· स्वयं तो इस चिता की ज्वाला में जल रही थी।

आपको भी इसमें सम्मिलित कर लेती तो दोनों का जीवन दूभर हो जाता—"

"क्या भैया यह भी जानते हैं कि इस पाप में···"

"नहीं, नहीं···और न उन्हें पता लगना चाहिये···"

"क्यों ?"

"मैं नहीं चाहती कि आप पर कोई उँगली उठाये।"

"नहीं तरुण ! तुम इतने दिनों अकेली इस आग में जलती रही हो और मुझे बताया तक नहीं ···वह तुम्हें बदचलन समझें, दोषी ठहरायें और मैं मौन रहूँ···"

"आपका मौन रहना ही उचित है।"

"क्यों ?"

"मुझे तो उनकी दृष्टि में जितना बुरा होना था हो चुकी···आपको वह प्यार करते हैं···आपका आदर करते हैं···इस भावना को मिटाने से क्या लाभ···भलाई इसी में है कि यह रहस्य-रहस्य ही रहे···मेरा सुख, मेरा जीवन तो आप ही से है ···आप वास्तविकता को जानते हैं तो मुझे दुनिया वालों का क्या भय ?"

"किन्तु यह क्योंकर हो सकता है ?" वह तरुण को झटके से एक ओर हटाते हुए खड़ा हो गया।

"भगवान् के लिए भैया से कुछ न कहियेगा···आपको मेरी सौगंध···"

"नहीं तरुण ! वह तुम्हारे सम्बन्ध में क्या सोचते होंगे···वह मैं सहन नहीं कर सकता।"

"जब हम दोनों एक साथ हैं तो सब सहन हो जायेगा।"

निर्मल चुप हो गया और सोच में पड़ गया। वह बड़े असमंजस में था। उसे समझ न आ रही थी कि इस स्थिति में क्या करे ? तरुण ने आँचल से अपने आँसू पोंछे और कुछ देर रुक कर बोली—

"अब मैं यहाँ न रह सकूँगी।"

"यही तो मैं सोच रहा था ···तुम्हें कहाँ ले चलूँ ?"

"कहीं भी···किन्तु; यहाँ न रहूँगी यूँ जीने से तो मर जाना अच्छा।"

"तरुण ! ऐसी बात न कहो···सोचने दो, समझने दो···भैया से क्या कहूँ "

"यही कहिये···हम जा रहे हैं।"

"कहाँ ?"

"कहिए···कहीं भी···अब न रहेंगे।"

रात-भर निर्मल यही सोचता रहा कि भैया से क्या कहे—उनके सामने बोलने का उसे साहस न था···वह उनकी पूरी बात भी न बता सकता था तरुण ने उसे सौगन्ध दे रखी थी।

डाक्टर द्वारकादास बरामदे में बैठे दैनिक पत्र देख रहे थे। निर्मल धीरे-धीरे पाँव उठाता उनके पास जा खड़ा हुआ। वह आज बड़े गम्भीर और चिन्तित थे। निर्मल की ओर उन्होंने कोई ध्यान न दिया और चुपचाप पत्रिका पढ़ते रहे। जब बड़ी देर तक उन्होंने दृष्टि ऊपर न उठाई तो निर्मल ने मौन को तोड़ते हुए कहा—

"भैया !"

डाक्टर द्वारकादास ने पत्रिका में से झाँककर उसे देखा।

"भैया ! हम जा रहे हैं।"

"कहाँ ?"

"पूना"

"कब ?"

"कल ही—"

"अभी तो तुम्हारी छुट्टी है ना···?"

"केवल एक सप्ताह रह गया है, वहाँ जाकर घर का प्रबन्ध भी करना है।"

"क्यों ?"

"मैं अकेला नहीं···तरुणा भी साथ जा रही है।"

"इतनी शीघ्र···"वह आश्चर्य प्रगट करते हुए बोले और फिर बात चालू रखते हुए कहने लगे—"ऐसी दशा में उसके लिये यात्र-करना ठीक नहीं।"

"यहाँ उसका रहना भी तो ठीक नहीं···यह हर समय की खींचा-तानी कहीं घर की शांति भंग न कर दे···?"

"इतना समय जो वह यहाँ थी तो क्या···"

"भैया ! तब और बात थी—मेरे विचार में अब उसका यहाँ से चला जाना ही उचित है—यह स्थान की तबदीली शायद उसके मन को शान्ति दे सके।"

डाक्टर द्वारकादास ने पत्रिका एक ओर रख दी और कड़ी दृष्टि से निर्मल को देखने लगे जो अपनी पत्नी की वकालत करने आया था। वह कुर्सी से उठ खड़े हुए और बाहर आँगन में आँखे दौड़ाते हुए दृढ़ स्वर में बोले—

"नहीं···वह कहीं नहीं जा सकती···"

"भैया!" निर्मल मानसिक दुविधा में पड़ गया।

"वह तुम्हारी पत्नी है, इस सम्बन्ध में मुझे उसको रोकने का कोई अधिकार नहीं···किन्तु डाक्टर के नाते मैं उसे यहाँ से जाने की अनुमति नहीं दे सकता···उसे आराम की आवश्यकता है और तनिक सी भूल भी भय का कारण बन सकती है।"

किन्तु वह यहाँ से जाने के लिए हठ कर रही है।'

"ओह ! तो फिर मुझ से आज्ञा कैसी ? आप लोग जब भी चाहें यहाँ से जा सकते हैं।" वह क्रोध में यह कहते हुए अपने कमरे की ओर मुड़े। निर्मल ने पुकारा—

"भैया ?"

वह वहीं मुड़कर रुक गये किन्तु उन्होंने मुड़कर उसकी ओर न देखा। निर्मल बात पूरी करते हुए बोला—भैया इसमें बुरा मानने

की तो कोई बात नहीं । आप समझते ही हैं कि आँखों से गिर कर रहना कितना कठिन है ।"

"तुम मुझ से आज्ञा लेने आये हो या उसके वकील बनकर आए हो ।"

"कुछ भी समझ लीजिए…जब भ्रम बढ़ जाये तो जीना कठिन हो जाता है ।"

"भ्रम ! सबके सामने उसने मुझे अपने बच्चे का हत्यारा कहा…यही उपहार मिलना था मुझे…

'आपने भी तो उसे…" वह कहते-कहते रुक गया उसका मुख कान तक लाल हो गया और होंट थरथराने लगे ।

"कहो…कहो—रुक क्यों गए ? तुम्हारी पत्नी की शान में उदडण्ता की है ना मैंने। वह क्या है…काश ! मैं तुमसे कह सकता…तुम जान सकते …"

'वह मैं जानता हूँ…वह अच्छी है या बुरी है मैं कुछ कहना—सुनना नहीं चाहता… मैं तो आपसे केवल यह कहने आया था कि हम जा रहे हैं ।"

"तो चले जाओ …कल क्यों आज ही जाओ…अभी जाओ, इसी समय…मुझे क्या ? मैं यही समझूंगा तुम मेरे कुछ नहीं थे ।"

भैया !"

डाक्टर द्वारकादास ने निर्मल की और कोई बात न सुनीं और क्रोध में भरे हुए अपने कमरे में चले गए । जानकी ने भी उन्हींका साथ दिया । तरुण किवाड़ की ओट में दोनों भाइयों की बातें सुन रही थी । जब जानकी और भैया बरामदे से चले गए तो वह धीरे से निर्मल के पास आई और उसे साथ लेकर अपने कमरे में चली गई ।

डाक्टर द्वारकादास को निर्मल की बात का बड़ा दुःख हुआ था। वह इसकी कल्पना भी न कर सकते थे कि वह यूं डटकर उनके सामने बोलेगा… [illegible] जिसके

·आज इस स्त्री ने उनके प्यार को घृणा में परिवर्तित कर दिया
ा। उनका मन जल रहा था। उनके मस्तिष्क की नसें खिची हुई
ीं।

सहसा निर्मल की पुकार कानों में सुनाई दी और वह एक
ायल पक्षी के समान तड़पकर मुड़े मानो उनके घाव पर किसी ने
मक छिड़क दिया हो। निर्मल ने एक बार फिर पुकारा "भैया!"
ाह सामने खड़ा उनसे विदा लेने के लिए आया था। "भैया मैं जा
हा हूँ।"

वह चुप खड़े रहे। निर्मल ने उनके पाँव छूए और बाहर चला
गया। अभी उसने देहली पार की ही थी कि सूरज हाथ में एक
खिलौना थामे भागता हुआ भीतर आया और बोला—"यह लेल का
इन्दन ·· शांती ने दिया -"

"फेंक दो इसे बाहर हमें नहीं चाहिए यह इंजन-विजन ...
उन्होंने इंजन उसके हाथ से छीना और पूरी शक्ति से बाहर आँगन
में रखे उनके सामान पर फेंक दिया। सूरज रोता हुआ बाहर भागा।
निर्मल जाते-जाते रुक गया और सूरज को थामकर वहीं से खड़े-खड़े
बोला—

"इस निर्दोष का हृदय तोड़ने से क्या···हम पर क्रोध है तो हमीं
को दण्ड दीजिये—"

"हृदय···यहाँ अब हृदय नहीं पत्थर बसते हैं···" उन्होंने।
उसी कठोर भाव से उत्तर दिया।

नँगीना कोचवान की सहायता से आंगन में रखा सामान बारी-
बारी बाहर निकलवाने लगी। जानकी उदास मुख किन्तु मौन एक
ओर खड़ी यह सब देख रही थी। तरुण अभी तक चुपचाप सामान
के पास खड़ी थी। जब सामान बाहर जा चुका तो वह धीरे-धीरे
पाँव उठाती डाक्टर द्वारकादास के कमरे में गई। आज उसकी चाल
में एक विशेष दृढ़ता थी···उसके पाँव काँप रहे थे। उसने झुककर

की तो कोई बात नहीं। आप समझते ही हैं कि आँखों से गिर कर रहना कितना कठिन है।"

"तुम मुझ से आज्ञा लेने आये हो या उसके वकील बनकर आए हो।"

"कुछ भी समझ लीजिए...जब भ्रम बढ़ जाये तो जीना कठिन हो जाता है।"

"भ्रम ! सबके सामने उसने मुझे अपने बच्चे का हत्यारा कहा...यही उपहार मिलना था मुझे...

'आपने भी तो उसे..." वह कहते-कहते रुक गया उसका मुख कान तक लाल हो गया और होट थरथराने लगे।

"कहो...कहो—रुक क्यों गए ? तुम्हारी पत्नी की शान में उदडण्ता की है ना मैंने। वह क्या है...काश ! मैं तुमसे कह सकता...तुम जान सकते ..."

'वह मैं जानता हूँ...वह अच्छी है या बुरी है मैं कुछ कहना—सुनना नहीं चाहता... मैं तो आपसे केवल यह कहने आया था कि हम जा रहे हैं।"

"तो चले जाओ ...कल क्यों आज ही जाओ...अभी जाओ, इसी समय...मुझे क्या ? मैं यही समझूंगा तुम मेरे कुछ नहीं थे।"

भैया !"

डाक्टर द्वारकादास ने निर्मल की और कोई बात न सुनीं और क्रोध में भरे हुए अपने कमरे में चले गए। जानकी ने भी उन्हींका साथ दिया। तरुण किवाड़ की ओट में दोनों भाइयों की बातें सुन रही थी। जब जानकी और भैया बरामदे से चले गए तो वह धीरे से निर्मल के पास आई और उसे साथ लेकर अपने कमरे में चली गई।

डाक्टर द्वारकादास को निर्मल की बात का बड़ा दुःख हुआ था। वह इसकी कल्पना भी न कर सकते थे कि वह यूं डटकर उनके सामने बोलेगा... वह भी अपनी पत्नी के लिए—वह पत्नी जिसके

…आज इस स्त्री ने उनके प्यार को घृणा में परिवर्तित कर दिया था। उनका मन जल रहा था। उनके मस्तिष्क की नसें खिंची हुई थीं।

सहसा निर्मल की पुकार कानों में सुनाई दी और वह एक घायल पक्षी के समान तड़पकर मुड़े मानो उनके घाव पर किसी ने नमक छिड़क दिया हो। निर्मल ने एक बार फिर पुकारा "भैया!" वह सामने खड़ा उनसे विदा लेने के लिए आया था। "भैया मैं जा रहा हूँ।"

वह चुप खड़े रहे। निर्मल ने उनके पाँव छूए और बाहर चला गया। अभी उसने देहली पार की ही थी कि सूरज हाथ में एक खिलौना थामे भागता हुआ भीतर आया और बोला—"यह लेल का इन्दन … शांती ने दिया –"

"फेंक दो इसे बाहर हमें नहीं चाहिए यह इंजन-विजन … उन्होंने इंजन उसके हाथ से छीना और पूरी शक्ति से बाहर आँगन में रखे उनके सामान पर फेंक दिया। सूरज रोता हुआ बाहर भागा। निर्मल जाते-जाते रुक गया और सूरज को थामकर वहीं से खड़े-खड़े बोला—

"इस निर्दोष का हृदय तोड़ने से क्या…हम पर क्रोध है तो हमीं को दण्ड दीजिये—"

"हृदय…यहाँ अब हृदय नहीं पत्थर बसते हैं…" उन्होंने। उसी कठोर भाव से उत्तर दिया।

नगीना कोचवान की सहायता से आंगन में रखा सामान बारी-बारी बाहर निकलवाने लगी। जानकी उदास मुख किन्तु मौन एक ओर खड़ी यह सब देख रही थी। तरुण अभी तक चुपचाप सामान के पास खड़ी थी। जब सामान बाहर जा चुका तो वह धीरे-धीरे पाँव उठाती डाक्टर द्वारकादास के कमरे में गई। आज उसकी चाल में एक विशेष दृढ़ता थी…उसके पाँव काँप रहे थे। उसने झुककर

डाक्टर द्वारकादास के पाँव छूने चाहे। वह उसे झुके देखकर एका-एक पीछे हट गए। तरुण की आँखों में मोतियों की भाँति दो आँसू झिलमिला उठे। जानकी भी उन्हीं के कमरे में आ गई थी और कोने में खड़ी डबडबाई आँखों से यह दुःखांत नाटक देख रही थी।

डाक्टर द्वारकादास से हटकर तरुण जानकी के पास आई। जानकी रह न सकी और उसके गले से लगकर सिसकियाँ भरते हुए बोली—

"तरुण ! हमें छोड़कर न जाओ···"

"भाभी—! इतने दिनों इकट्ठे रहे, यह मैं जीवन भर नहीं भूल सकती···तुम्हारे और भैया के उपकार तो कभी न उतार सकूँगी···यह प्रार्थना है···हमारे पास पूना अवश्य आना···नहीं तो मैं समझुँगी तुम भी मुझे प्यार न करती थीं···मैं तुम्हारी दृष्टि से भी बिल्कुल गिर गई।"

"आंती ! मैं भी ममी के छात आऊँगा।" सूरज बीच में से बोल उठा।

तरुण बच्चे की भावना से व्याकुल हो गई। ममता उबल पड़ी। उसने मुन्ना के सिर पर प्यार से हाथ फेरा और उसके गालों को थपथपाते हुए भर्राई हुई आवाज में बोली—

"तेरे बावा आने देंगे तो आना···" और फिर जानकी से सम्बोधित होकर कहने लगी, "भाभी ! कहो तो मुन्ने को कुछ दिन के लिए साथ लेती जाऊँ !"

जानकी अभी उत्तर न दे पाई थी कि डाक्टर द्वारकादास ने वहीं खड़े-खड़े कड़ककर कहा—

"नहीं···मुन्ना नहीं जा सकता···"

"क्या हुआ ? कुछ दिन रह कर लौट आयेगा।" जानकी के मुँह से निकल गया।

डाक्टर द्वारकादास शायद मन की भड़ास निकालने का अवसर

ढूंढ़ रहे थे झट व्यंग कसते हुए बोले—

"मैं यदि एक डाक्टर होते हुए इसके बच्चे के प्राण ले सकता हूँ तो इस का क्या भरोसा···क्या वह मेरे बच्चे की हत्या नहीं कर सकती···यह तो औरत है···वह औरत है, जिसने केवल छीनना सीखा है···देना नहीं···"

"भैया···" तरुणा के होंट कांपे और वह आगे कुछ न कह सकी। निर्मल जो बाहर सामान रखवा रहा था भीतर आ गया था भैया की बात सुनकर उसने तरुण की ओर देखा। वह शायद कुछ कहना चाहती थी किन्तु; निर्मल का संकेत पाकर चुप हो गई। वह स्वयं आगे बढ़ा और हाथ जोड़ते हुए बोला—

"भैया! हमसे कोई भूल हो गई हो तो मैं उस के लिए क्षमा माँगता हूँ···घर से जाते हुए ऐसे शब्द न कहिए···मैं विवश हूँ किन्तु कृतघ्न नहीं।"

"तुम्हारी विवशता तो देख रहा हूँ···एक ओर स्त्री ओर दूसरी ओर मैं···एक ओर भगवान और दूसरी ओर कर्त्तव्य···इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं···स्त्री संसार में पुरुष की सबसे बड़ी दुर्बलता है—एक बार वह उसके जाल में फँसकर पंख कटा पक्षी बनकर रह जाता है—तुम्हें एक अवारा स्त्री ने अपने वस में करके कहीं का नहीं रखा—।"

"भैया!" निर्मल क्रोध से चिल्लाया, "आप के मुँह से यह सब शोभा नहीं देता।" वह भावुकता पर अधिकार पाने का पूरा प्रयत्न कर रहा था।

"सच्चाई सदा ही कही जा सकती है—मैं उस पर कब तक पर्दा डाल सकता हूँ—तुम्हारा शुभचिन्तक तरुणा के माथे पर लगे उस कलंक को नहीं धो सकता जो आज भी इस दिन के उजाले में वैसे ही चमक रहा है।"

तरुण यह सुनकर पसीना-पसीना हो गई। यहाँ क्षणभर रुकना

भी उसके लिए दूभर हो रहा था। उसने पति से कहा, "चलिए देर हो रही है···"और बिना उसकी बात सुने बाहर निकल गई। निर्मल और जानकी स्तब्ध खड़े उसे देखते रहे।

अभी वह आँगन में ही थी कि डाक्टर द्वारकादास ऊँचे स्वर में बोले—

"जाओ···खड़े-खड़े क्या देख रहे हो—देखो तुम्हारा जीवन तुम्हें पुकार रहा है···वह तुम्हें हम से अलग करके नये स्वर्ग का निर्माण कर रही है—जाओ हमारी अशुभ छाया कहीं तुम पर पड़ न जाये—और हाँ देखो,—अब भी इस घर में यदि तुम्हारी कोई वस्तु रह गई हो तो उसे ले जाओ—अभी इसी समय वरना मैं उसे तोड़-फोड़ कर बाहर फिकवा दूँगा—मैं यहाँ ऐसी कोई भी चीज नहीं देखना चाहता जिसमें तुम्हारी याद लिपटी हो। तुम्हें तो भूले से कभी इस हृदय ने भी याद किया तो मैं उसे भी निकाल फेंकूँगा।"

"किन्तु यह आप से न होगा।" यह तरुण की आवाज थी जो भैया की गरज सुनकर पलट गई थी। वह सीधी चलकर डाक्टर द्वारकादास के सामने जाकर खड़ी हो गई और क्षण-भर रुककर बोली—

"डाक्टर ! दूसरों को पीड़ा में देखकर उसे सांत्वना देना सरल है किन्तु; किसी की पीड़ा को बाँटने के लिए बहुत बड़ा हृदय चाहिए—"

निर्मल और जानकी आश्चर्य-चकित उसे देखे जा रहे थे। जाने वह क्या कहने वाली थी ?

"तो क्या अब मुझे तुम्हारी पीड़ा बटानी होगी ?" डाक्टर द्वारकादास के होंठों पर व्यंग भरी मुस्कराहट भरी थी।

"नहीं, बल्कि आपको मेरी अमानत लौटानी होगी।" उसके शब्दों में एक विशेष दृढ़ता और आँखों में एक ऐसी चमक थी जो केवल विजयी की आँखों में आती है।

"अमानत ?" डाक्टर द्वारकादास ने झट पूछा ,

"हाँ डाक्टर ! मुझे इस कठोर सम्बोधन के लिए क्षमा करना —आप को शायद याद हो मैंने आपको एक दिन कहा था कि यदि मैं अपने बच्चे को जीवन का उजाला दिखाऊँ तो आप कभी उसे आश्रय दे सकेंगे—इसलिए कि आपने पीड़ा बटाना नहीं सीखा—मैं उसी जीवन के उजाले को आपसे वापस माँगती हूँ—मेरा लाल, मेरे मन का दीपक लौटा दीजिये ।"

"यह क्या कह रही हो तुम ?" निर्मल आगे बढ़ते बोला ।

"हाँ मेरा मुन्ना मुझे वापस चाहिए—मेरा—सूरज—मैं अब उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती ।"

"सूरज—मुन्ना—यह क्या कह रही हो तरुण ?" निर्मल आश्चर्यचकित उसे बांह से झटकते हुए बोला ।

"जो मुझे न कहना चाहिए था— डाक्टर ! यही वह चिराग है जिसे एक दिन आपने बुझाने से इन्कार कर दिया था—जिसे मैंने अपने लहू से सींचा, उसे जीवन प्रदान किया और अब वह आपके सामने जल रहा है किन्तु; उसमें प्रकाश नहीं—ममता की पुकार उसे अपनी ओर खींचना चाहती है किन्तु; उसमें आकर्षण नहीं—मैंने ही दीप को जलाया और मेरा ही घर अंधेरा रहे—मैं उसे अब किसी प्रकार यहाँ नहीं छोड़ूँगी—मुझे मेरा मुन्ना दे दो, मेरा लाल दे दो···" कहते-कहते उसकी आवाज तीव्र होती गई और वह सूरज को लेने के लिए लपकी किन्तु; निर्मल ने उसे रोक दिया ।

वह फिर चिल्लाई—"और यह पाप मुझे अकेली का नहीं इसमें आपका लहू भी सम्मिलित है ।" कुछ देर के लिए वह रुक गई ।

डाक्टर द्वारकादास सिर नीचा किये उसकी बातें सुन रहे थे । एकाएक उन्होंने सिर उठाया और अवाक् उसे देखने लगे । तरुण ने बात चालू रखी—"आपके कुल का लहू···आपके भाई का लहू··· यह कलंक केवल मेरे माथे का कलंक नहीं—आपके कुल और परि-

वार का कलंक भी है···मैंने वड़ा यत्न किया कि सब दोष अपने सिर पर लेकर इसे अपने तक ही सीमित रखूँ किन्तु भाग्य को वह स्वीकार न था···सत्य स्वयं प्रकाश में आ जाता है—" यह कहकर वह चुप हो गई। डाक्टर द्वारकादास ने प्रश्न सूचक दृष्टि से निर्मल की ओर देखा। वह आँखें झुकाए खड़ा था। अब पीछे हटना सम्भव न था।

"हाँ भैया ! तरुण ठीक कहती है···इस पाप में मैं ही उसका साथी हूँ।" उसने धीरे-से कहा।

'तो दूर हो जाओ मेरी आँखों से" डाक्टर द्वारकादास चिल्लाये।

तरुणा ने झट तेजी से लपक कर सूरज को जानकी के हाथों से छीन लिया और बाहर की ओर जाने लगी। सूरज इस खींचा-तानी से सहम गया और ममी-ममी चिल्लाने लगा। जानकी से यह न देखा गया और वह दोवारा सूरज को तरुणा से लेने के लिए बढ़ी। डाक्टर द्वारकादास ने उसे वहीं रोक दिया और आवेश में बोले—

"जानकी ! जाने दो इन्हें जाने दो···एक नहीं, दो नहीं, पाप की तीन मूर्तियाँ···मेरी आँखों के सामने से हटा दो इनको···मैं इनकी सूरत भी नहीं देखना चाहता।"

तरुणा रोते हुए मुन्ने को खींचकर वाहर ले गई और निर्मल भी उसके पीछे नीचा सिर किए निकल गया। जानकी ने उन्हें पीछे से पुकारकर रोकना चाहा किन्तु; उन्होंने अब के मुड़कर भी न देखा।

कमरे में फिर मौन छा गया, मृत्यु का सा मौन। जानकी यूँ खड़ी थी मानो वह बिना प्राणों की देह हो। डाक्टर द्वारकादास उसके पास आये और बोले—

"जानकी ! आज जीवन में मैंने बहुत बड़ी हार खाई है···मेरे नियम, मेरी आशाओं और मेरी मान-मर्यादा को निर्मल ने धूल में मिला दिया है···मैं न जानता था कि जिसको मैं देवता समझे हुए वह शैतान का रूप लिए बैठा है।"

जानकी ने कोई उत्तर न दिया। वह धड़ाम से कुर्सी पर जा गिरी। कमरे के मौन को उसकी सिसकियाँ तोड़ रही थीं। उसके कानों में निरन्तर उसके मुन्ने की ममी-ममी की ध्वनि आ रही थी जो···बलपूर्वक उसे उससे दूर ले जाया जा रहा था।

सोलह

रात मौन अंधेरी थी। सन्नाटा एक विशेष उदासी का प्रतीक था। कभी-कभी वायु का कोई मन्द झोंका वातावरण में एक हल्की-सी थरथराहट उत्पन्न कर देता।

डाक्टर द्वारकादास आराम कुर्सी पर बैठे आज की पत्रिका देख रहे थे। उनकी आँखें तो पत्रिका में थीं किन्तु मन कहीं और था··· अशांत और स्थिर। जानकी थोड़ी दूर कालीन पर औंधी लेटी अपने विचारों में डूबी थी। दोनों बेचैन थे, दोनों के हृदयों में एक ही प्रकार की पीड़ा थी; एक ही तड़प किन्तु, वह दूसरे के घावों पर मरहम रखने में असमर्थ थे।

तनिक भी आहट होती तो दोनों एक साथ दृष्टि उठाकर सामने खुले द्वार को देखने लगते शायद कोई लौट आया हो किन्तु कुछ न देखकर फिर आँखें नीची कर लेते। अनजाने ही जिनकी प्रतीक्षा वह कर रहे थे उन्हें गये दो घण्टे हो चुके थे···अब वह काहे को लौटने लगे ? मानव पूर्ण निराशा को कभी स्थान नहीं देता, लाख घोर अन्धकार हो फिर भी कहीं से वह आशा की किरण का सहारा ले ही लेता है। उन्हें यूँ लग रहा था, जैसे तरुण और निर्मल रूठकर गये हैं···उन्होंने सम्बन्ध तोड़ा नहीं···वह स्वयं ही थोड़ी देर में लौट आयेंगे।

अँगीठी पर रखी टाइम पीस टिक-टिक समय के साथ पर अपना राग अलापे जा रही थी और यूँ समय की डोरी धीरे-धीरे लम्बी होती जाती थी। डाक्टर द्वारकादास मन ही मन जानकी के मनोभाव का अनुमान लगा रहे थे···मुन्ने के छिन जाने से उसके हृदय में कैसी टीसें उठ रही होंगी···कितनी व्याकुल होगी वह··· किन्तु वह उसकी पीड़ा को घटा न सकते थे···उनके होंठ बंद थे। वह सोचने लगे निर्मल ने अच्छा नहीं किया···अपना और तरुण का उनसे जीवन भर का नाता तोड़ कर चला गया···हाँ, सब सम्बन्ध तोड़ गया···किन्तु; और उपाय भी क्या था? वह और करता भी क्या? वास्तविकता में पाप तो उसी ने किया था···कुल की मर्यादा को कलंक लगा दिया उसने···कौन सा मुँह लेकर रहता अब···तरुण इतने दिनों इस रहस्य को क्योंकर गुप्त रख सकी···शायद लोक लाज से उसने होंट सी लिए हों···मुन्ना उनका अपना बच्चा था··· वही बच्चा जिसे गर्भ में लिए वह उनके क्लीनिक में आई थी! ऐसे कई प्रश्न उनके मस्तिष्क में उठने लगे। जितना वह इस मानसिक ताने-बाने को सुलझाने का प्रयत्न करते उतनी ही उलझने बढ़ती जातीं। तरुणा के शब्द निरन्तर उनके मस्तिष्क पर चोटें लगाये जा रहे थे।

बड़ी देर वह इस मानसिक दुविधा में स्वयं ही तड़पते रहे और जब यह पीड़ा असहनीय हो गई तो उन्होंने जानकी को पुकारा।

"जानकी!"

जानकी बेसुध सी कालीन पर औंधी लेटी आँसू बहा रही थी। पति की आवाज सुनकर उसने डबडबाई आँखों से उनकी ओर देखा।

"जानकी! रात बहुत जा चुकी···अब सो जाओ···"उन्होंने धीमे किन्तु करुण स्वर में कहा।

"आप भी तो चलिए···" जानकी ने टूटे स्वर में उत्तर दिया। 'न जाने आज नींद कहाँ उड़ गई?"

"आपका भाई गया है मेरा तो निर्मल और मुन्ना दोनों ग हैं···फिर भला नींद कहाँ ?"

"ओह···तो तरुणा की याद नहीं आती तुम्हें ?"

"आती है···किन्तु उसने व्यर्थ हठ की···आपसे झगड़ा हुअ था तो पति को ले जाती···मैंने भला उसका क्या बिगाड़ा था जो मेरी गोद सूनी कर गई।" सिसकियाँ भरते हुए वह बोली।"

भगवान ने उसकी गोद खाली कर दी और इसी पागलपन वह यह सब कर बैठी—वह भी तो माँ थी—" डाक्टर द्वारकादास बोले।

"आपने यह पहले मुझसे क्यों नहीं कहा ?"

"यह बातें भी भला कहीं कहने की होती हैं हमें तो घाव सीने हैं—उन्हें भरना है—टाँके तोड़कर, कुरेदकर उन्हें फिर से हरा नहीं करना।"

"पाप निर्मल ने किया और बुरी बनी तरुणा।"

"हाँ यही सोचकर तो मन बेचैन हुआ जा रहा है—न जाने कितना मानसिक कष्ट हुआ होगा उसे। दुख तो मुझे इस बात का है कि मैंने उसे सदा ऊपर उठाने का यत्न किया है और वह हर बार मेरे निश्चय को विफल बना देती रही—मैं उसे उभारने की चेष्टा करता रहा और वह न केवल लड़खड़ा कर गिर जाती रही बल्कि मुझ पर ही धूल गिरा दी।"

इसमें उसका क्या दोष ? उसका अपना पाप ही उसको चैन से न बैठने दे रहा था।"

"यह कह कर तो उसने हद कर दी कि उसके बच्चे की हत्या का कारण मैं हूँ।"

अभी शब्द डाक्टर द्वारकादास के होठों पर ही थे कि वह चुप हो गये। बाहर बरामदे में कुछ आहट हुई और दोनों चौकन्ने होकर उधर देखने लगे।

पर्दा हटा और निर्मल भीतर आया। मुर्झाये हुये मुख की उदासी बता रही थी कि कोई विशेष बात हो गई। जानकी झट कालीन पर बैठ गई और डाक्टर द्वारकादास उत्सुकतापूर्वक उसे देखने लगे। उन्हें सहसा विचार आया कि शायद वह अपनी 'भूल' पर लज्जित हो क्षमा माँगने आया है।

जानकी ने पूछा—

"तुरुण कहाँ है?"

"बाहर टैक्सी में।"

"क्यों?"

"भाभी! मुन्ना तो यहाँ नहीं आया?" निमल ने उसके प्रश्न का उत्तर न देते हुए पूछा।

"नहीं तो—क्या—।"

"वहाँ से भाग आया है।"

"कहाँ से? कब? कैसे?"

"थोड़ी देर पहले—वेटिंग रूम में सो रहे थे कि कहीं चुपके से निकल गया।"

"कहीं गाड़ी पर—"

"नहीं भाभी! सवेरे चार बजे से पहले कोई गाड़ी नहीं जाती।"

"तो—"

बहुत ढूंढा किन्तु कुछ पता नहीं चल रहा—सोचा शायद किसी प्रकार यहाँ चला आया हो।

"अकेला यहाँ कैसे चला आता।" चिन्ता प्रकट करते हुए जानकी ने कहा और डाक्टर द्वारकादास को सम्बोधित करते बोली—"सुना आपने—मुन्ना खो गया है—उठिए पोलिस में रिपोर्ट लिखवाइये—" किसी को साथ लीजिए—उसे ढुंढवाइये—भगवान् न करे उसे कुछ हो जाये।"

डाक्टर द्वारकादास गम्भीर बैठे दोनों का वार्तालाप सुन रहे थे।

पत्रिका उन्होंने फिर मुँह के सामने सरका ली थी जिससे वह उनके मुख पर की चिन्ता न देख सकें। जानकी की बात सुनकर उन्होंने पत्रिका को धीरे से मुँह से हटाया और असावधानी से बोले—"इतनी रात गये कहाँ मिलेगा ? होगा कहीं इधर, उधर—"

"अच्छा मत जाइये, मत उठिये—यह समय किसी हठ का या नियम छाँटने का नहीं—साहस करने का है—ठहरो निर्मल; मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ—" यह कहते जानकी ने अलमारी से चादर निकाली और शरीर को ढाँकते हुए बाहर चली गई।

निर्मल ने एक दृष्टि बड़े भैया पर डाली। वह फिर पत्रिका पढ़ने में लग गये थे। भैया ने इस परिस्थित में भी तनिक सहानुभूति प्रगट न की थी। इससे उसके मन को बड़ा दुख हुआ और वह चुपचाप जानकी के पीछे कमरे से निकल गया। डाक्टर द्वारकादास मौन बैठे उनके पाँव की चाप सुनने लगे। कुछ देर बाद मोटर स्टार्ट होने की ध्वनि हुई और फिर मोटर चलने की आवाज़ आई और धीरे-धीरे यह आवाज भी धीमी होती हुई समाप्त हो गई। फिर सर्वत्र वही मौन छा गया। पत्रिका उसके हाथों में खुली पड़ी थी किन्तु उनका ध्यान उन्हीं की ओर लगा था। मुन्ने के अचानक यूँ रेलवे स्टेशन पर खो जाने की सुनकर वह बेचैन हो उठे थे...स्टेशन उनके घर से बहुत दूर न था—कौन जाने वह घर ही की ओर आ रहा हो और किसी ने...नहीं-नहीं ऐसा नहीं होगा...ऐसा कोई विचार उनका मष्तिष्क स्वीकार न कर सका...उन्होंने सोचा उन्हें उसे ढूंढने के लिए जाना ही चाहिए...वह निर्मल का ही मुन्ना नहीं बल्कि इसी घर का दीपक है...उन्हीं का चिराग है...किन्तु; क्यों ? वह उसके लिए क्यों व्याकुल हों...वह लोग तो उन्हें अपना शत्रु समझते हैं...वह उठते-उठते रुक गए, विचार की दूसरी धारा ने उनके पाँव पकड़ लिए। वह फिर से कई बार देखी हुई पत्रिका पढ़ने लगे।

रात के मौन को अचानक एक आहट ने भंग किया। उन्होंने

चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा। उन्हें यूं लगा कि कोई धीरे-धीरे पिछवाड़े की खिड़की खटखटा रहा था। वह एकाएक उठे और खिड़की के पास आ खड़े हुए। उनका अनुमान ठीक था, कोई खिड़की से लगा शीशे को थपथपा रहा था।

उन्होंने झट खिड़की का पट खोल दिया। एक पतली-सी चीख निकली, "बाबा।" और इससे पूर्व की पुकारने वाला धमाके से गिर जाता उन्होंने शीघ्रता से लपककर उसे थामा और खींचकर ऊपर उठा लिया। यह सूरज था जो खिड़की से लटका हुआ ऊपर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। उसका सांस फूला हुआ था और आंखोंसे टपटपा आँसू नीचे गिर रहे थे। उसके शरीर की कम्पन बता रही थी कि वह बहुत डर गया है।

डाक्टर द्वारकादास ने उसे बाँहों में उठा लिया और वक्ष से लगाकर सस्नेह धीरे-धीरे उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। बच्चे की घबराहट कुछ समाप्त हुई और वह वाक्य के टुकड़े-टुकड़े करते हुए बोला—"बाबा! मैं न जाऊँगा···आंती औल अंकल के साथ न दाऊंगा···कभी न दाऊंगा तुमाले पास लऊँगा।"

"हाँ, हाँ मेरे बेटे। कौन भेजता है तुम्हें···मैं कभी न जाने दूंगा उनके साथ।"

"देको बाबा! वह अभी फिल आदायेंगे···मुदे थुपा दो···ममी कहाँ है! ममी! ममी···"

डाक्टर द्वारकादास का मन भर आया और वह मुन्ने को उठाकर अपने कमरे में ले आये। उसे अपने बिस्तर पर लिटाकर उसकी आँखों से आँसू पोंछते हुए बोले—

"अब तुम्हें यहाँ से कोई न ले जा सकेगा···अब तू सो जा।"

"ममी कहाँ है?"

"अभी आती है···" वह उसे थपकते हुए सुलाने का प्रयत्न करने लगे।

कुछ देर बाद फिर पहले की सी निस्तब्धता छा गई। मुन्ने की आँख लग गई। डाक्टर द्वारकादास के अपने मन का गुबार छटने लगा। मुन्ने की भोली-भाली सूरत उन्हें बड़ी प्यारी लग रही था ।

अचानक बाहर के द्वार पर आहट हुई। शायद जानकी आई थी। डाक्टर द्वारकादास ने झट उठकर अपने कमरे की बत्ती बुझा दी और मुन्ने को वहीं सोता देखकर गोल कमरे में लौट आये। इससे पूर्व कि वह सब भीतर प्रवेश करते वह आराम कुर्सी पर बैठकर फिर पत्रिका देखने लगे मानो कुछ हुआ ही न था। कमरे में आहट हुई और उन्होंने पत्रिका से दृष्टी उठाकर आने वाले को देखा। निर्मल और जानकी घबराये हुए उसकी ओर बढ़ रहे थे। तरुणा बाहर बरामदे में ही रुक गई। डाक्टर द्वारकादास ने उसे भी दीवार से खड़े हुए देख लिया और असावधानी से जानकी को सम्बोधित किया—

"क्यों ? मिला नहीं ?"

'कहीं नहीं—शहर का कोना-कोना छान मारा किन्तु कोई चिन्ह नहीं मिला।"

"केवल कोने ही छानते रहे या ऊपर नीचे भी कहीं देखा ?"

"हमारे प्राण जकड़े हुए हैं और आपको मज़ाक की सूझ रही है ?"

"मज़ाक— कैसा मज़ाक ?" वह कुर्सी से उठते हुए बोले। उन्होंने एक दृष्टि से निर्मल को देखा और फिर बरामदे में दीवार से लगी छिपी खड़ी तरुणा को। क्षण भर वह खड़े उन्हें देखते रहे और फिर उठकर अलमारी से अपना कोट निकालने लगे। निर्मल और जानकी के मुर्झाये हुए मुख पर आशा की एक किरण सी चमकी। तरुण

अपने स्थान से तनिक खिसक कर आगे आ गई थी। कोट पहनकर डाक्टर द्वारकासाद खड़े हो गये और धीरे से बाहर देखते हुए बोले—

"आओ, तरुण ! भीतर आ जाओ—"

वह सहमी हुई सी डरती-डरती पाँव उठाती कमरे में आ गई और आँखें नीची करके खड़ी हो गई। डाक्टर द्वारकादास ने झट अपने सोने के कमरे का किवाड़ खोल दिया। सब आश्चर्य चकित उधर देखने लगे। डाक्टर द्वारकादास ने बढ़कर बिजली का बटन दबा दिया। कमरे में सहसा उजाला हो गया और सब स्तब्ध खड़े के खड़े रह गये। सामने उनके बिस्तर पर मुन्ना आनन्द की नींद सो रहा था। तरुण और जानकी एक साथ उधर लपकीं। डाक्टर द्वारकादास बीच में खड़े हो गये और उन्हें रोकते हुए बोले—

"मत उठाओ सो रहा है।"

दोनों के मुख पर एक आभा-सी दौड़ गई और आँखों में आँसू ढलक आये। डाक्टर द्वारका दास ने फिर अपने कमरे की बत्ती बुझा दी और निर्मल के कंधे पर हाथ रखते हुए उसे साथ चलने का संकेत किया।

"आप कहाँ चले ?" जानकी ने एकाएक पूछा।

"तुम्हारे देवर का सामान लाने···समझीं···"

पति के मुख से यह शब्द सुनकर जानकी की आँखों में प्रसन्नता के आँसू छलक पड़े और फिर तरुण के कन्धे पर हाथ रखकर उसे सांत्वना देने लगी। तरुण ने अनायास अपना सिर उसके वक्ष पर रख दिया। डाक्टर द्वारकादास ने बाहर जाते हुए धीरे-से जानकी के कान में कहा।

"ऐसा न हो कि हम लौटें तो अब मुन्ने की माँ खो जाए।"

तरुण झट सीधी खड़ी होकर डाक्टर द्वारकादास के पाँव में गिर गई। उन्होंने झुककर उसे बाँहों में थाम लिया और बोले—

"अब तो इस घर में पराई बनकर नहीं रहोगी ?"

"मैं लज्जित हूँ।" तरुण ने आँखें झुका कर उत्तर दिया।

"और मैं भी।" डाक्टर द्वारकादास ने मुस्कराते हुए कहा और

निर्मल का हाथ पकड़ कर बाहर चले गये । दोनों मूर्तिमान खड़ी उन्हें देखती रह गईं । जब टैक्सी के चलने की आवाज आई तो तरुण फिर भाभी से लिपट गई ।

तरुणा को यूं लग रहा था जैसा उसके जीवन के अंधेरे मार्ग पर एक साथ अचानक सहस्त्रों दिये जगमगा उठे हों और उनके प्रकाश से उसके मन का कोना-कोना जगमग-जगमग कर रहा हो ।

———